❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष २ | गौराब्द ४७०, मास—वामन २३, वार—सङ्कर्षण | संख्या २
सोमवार, ३२ आषाढ़, सम्वत् २०१३, १६ जुलाई १९५६

श्रीश्रीजगन्नाथ-स्तोत्रम्

[ब्रह्मणा-स्तुतः]

विषयानन्दमखिलं सहजानन्दरूपिणः ।
अंशं तवोपजीवन्ति येन जीवन्ति जन्तवः ॥१॥
गुणातीत गुणाधार त्रिगुणात्मन्नमोऽस्तु ते ।
त्वन्मायया मोहितोऽहं सृष्टिमात्रपरायणः ॥२॥

हे भगवन् ! सहज आनन्दस्वरूप आपके अखिल विषयानन्दकी एक कणिका मात्र प्राप्त कर ही समस्त प्राणी जीवित हैं ॥१॥

हे त्रिगुणात्मन् ! आप सत्त्व आदि तीनों गुणोंके आधार होकर भी तीनों गुणोंसे अतीत हैं; अतएव आपको नमस्कार है ॥२॥

नमो देवाधिदेवाय देवदेवाय ते नमः ।
दिव्यादिव्यस्वरूपाय दिव्यरूपाय ते नमः ॥३॥

हे प्रभो ! आप अखिल देवताओंके भी आराध्य और अधिदेवता हैं । आप दिव्यरूप होकर भी दिव्यादिव्य स्वरूप हैं; अतएव आपको बार-बार नमस्कार है ॥३॥

जरा मृत्युविहीनाय मृत्युरूपाय ते नमः ।
ज्वलदग्निस्वरूपाय मृत्योरपि च मृत्यवे ॥४॥

आप जरा-मृत्युरहित और समस्त प्राणियोंके लिये मृत्यु-स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है । मनिषियोंने आपको प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजोमय और मृत्युका भी मृत्यु-स्वरूप गान किया है ॥४॥

प्रपन्न-मृत्यु नाशाय सहजानन्दरूपिणे ।
भक्त प्रियाय जगतां मात्रे पित्रे नमो नमः ॥५॥

हे देव ! आप स्वाभाविक आनन्दमय हैं । आप शरणागत व्यक्तियोंकी मृत्युके विनाशक, भक्तोंके अतिशय प्रिय और सम्पूर्ण जगत्के माता-पिता हैं ॥५॥

नमोनम स्ते जगदेकवन्द्य,
सुरासुराभ्यर्चितपादपद्म ।
नमो नमस्तापहरैकचन्द्र,
नमो नमः सान्द्रसुधौघसान्द्र ॥६॥

हे देव ! आप समग्र जगत्के एकमात्र आराध्य हैं, इसीलिये देवता और असुर सभी आपके चरण-कमलोंका अर्च्चन किया करते हैं । हे नाथ ! इस सम्पूर्ण विश्वमें एकमात्र आप ही अमृतकी घनमूर्त्ति, संतापको मिटानेवाले अद्वितीय चन्द्रस्वरूप हैं; अतएव आपको नमस्कार है ॥६॥

नमो नमः कम्पनदूरभूत,
दुष्प्राप-कामप्रद-कल्पवृक्ष ।
दीनाशरण्य प्रणतैकदुःख-
संघोद्धृतौ नित्यसुबद्धपक्ष ॥७॥

हे दीनबन्धो ! आप दीन व्यक्तियोंकी दुर्लभ कामनाओंको पूर्ण करनेवाले स्थिर कल्पवृक्षस्वरूप हैं और दीन, निराश्रय तथा शरणागत भक्तोंकी असीम क्लेश-राशिको दूर करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, अतएव आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥७॥

प्रसीद जगतां नाथ मग्नानां दुःखसागरे ।
कटाक्षलीलापातेन त्रायस्व करुणाकर ॥८॥

हे नाथ ! दुःख-सागरमें निमग्न जीवोंके प्रति आप प्रसन्न हों । हे करुणावरुणालय ! आप करुणा प्रकाश कर अपनी करुणाकटाक्षसे जगत्के प्राणियोंकी रक्षा करें ॥८॥

—उत्कलखण्डके २७ वें अध्याय से

आलवारोंकी जीवनी

(३) विष्णुचित्त (पेरिआलवार)

माता-पिता और बाल्य-परिचय

आलवारों में श्रीविष्णुचित्तका नाम सबसे पहले आता है। यों तो उनका एक नाम भट्टनाथ भी है परन्तु तमिल भाषामें इनका प्रसिद्ध नाम पेरि आलवार है। ये गरुड़के अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म मद्रास प्रान्तके तिन्नेवेली जिलेमें दक्षिण मथुरा (मदुरा) के निकट विल्लीपुत्तूर नामक पवित्र स्थानमें हुआ था। इनके पिता-माताका नाम मुकुंद और पद्मादेवी था। मुकुंद 'वेयार' नामक पवित्र ब्राह्मण वंशकी संतान थे। विष्णुचित्तका जन्म ४६ कल्याब्द-के ज्येष्ठ महीनेके स्वाति नक्षत्रमें हुआ था। इसी महात्माको ५१ वर्षकी आयुमें श्रीगोदादेवीको अपनी कन्याके रूपमें लालन-पालनका अधिकार मिला था। बाल्यकालसे ही इनके हृदयमें श्रीनारायणके प्रति स्वाभाविक भक्ति वर्त्तमान थी। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर बदलेमें एक सुन्दर जमीन खरीद ली और वहीं पर तुलसी और सुन्दर-सुन्दर फूलोंका एक अत्यन्त रमणीय बगीचा लगाया। वे प्रतिदिन सबेरे पुष्पोंको चयन करते और उनके सुन्दर हार गूँथ कर अपने ग्रामके वटपत्रशायी भगवान्‌को अर्पण करते। फिर उन सुन्दर मालाओंसे विभूषित भगवान्‌की दिव्यमूर्त्तिका दर्शनकर सुध-बुध खोकर अपलक नेत्रोंसे उनके अनुपम सौन्दर्य-माधुरीका पान करने लगते। यही इनके जीवनका दैनन्दिन कार्यक्रम बन गया था।

राजा वल्लभदेवको एक अज्ञात ब्राह्मणका उपदेश

उस समय दक्षिण मथुरा (मदुरा) प्रदेशमें पाण्ड्यवंशके वल्लभदेव नामक एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े ही प्रजावत्सल और धर्मात्मा राजा थे। एक दिन रातके समय जब वे मदुरा नगरीमें वेष बदलकर घूम रहे थे, किसी ब्राह्मणको रास्तेमें एक पेड़के नीचे सोते हुए देखा। राजाने उसे जगाकर पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ?'

'महाशय ! मैं एक ब्राह्मण हूँ, उत्तरदेशसे गंगामें स्नान कर अब मैं अपने घरको लौट रहा हूँ। रास्तेमें आज यहीं रात हो गयी। अतः यहाँ विश्राम कर रहा हूँ।'—ब्राह्मणने उत्तर दिया।

'अच्छी बात है, आप बड़े विद्वान् जान पड़ते हैं तथा देशाटन भी किए हुए हैं। अतः आप मुझे अपने अनुभवकी किसी बातका उपदेश करें।'—राजाने नम्रतासे जिज्ञासा की।

ब्राह्मणने कहा—'यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो सुनिए—

'वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान्निशार्थमर्द्धं दिवसं यतेत।
वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च॥'

भावार्थ यह कि मनुष्य आठ महीने खूब परिश्रम करता है कि वह वर्षाके चार महीने सुखसे खा-पी सके, दिन भर इसलिए परिश्रम करता है कि रातमें सुखसे सो सके, जवानीमें यत्नके साथ इसलिए संग्रह करता है कि बुढ़ापेके दिन सुखसे कट सकें। इन बातों से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्यको चाहिए कि वह इस जन्ममें परलोकके कल्याणके लिए ही सर्वदा प्रयत्न करे।'

राजाकी चिन्ता और सभाका आयोजन

इन उपदेशपूर्ण वचनोंको सुनकर राजाके हृदयमें परमार्थ तत्त्वको जाननेके लिए तीव्र उत्कंठा जग पड़ी। उन्होंने अपने मन्त्री चेल्वनम्बिको बुलाया और उससे परामर्शकर देशभरके वैदान्तिक साधुओं तथा पण्डितोंकी एक बड़ी सभाका आयोजन किया। उसमें सारे धर्मोंके प्रतिनिधि बुलाये गये। शैव, शाक्त, सूर्योपासक, गाणपत्य, मायावादी, सांख्य, वैशेषिक,

पाशुपत, जैन तथा बौद्ध—सभी धर्मोंके बड़े-बड़े प्रतिनिधि उस सभामें उपस्थित हुए। किन्तु राजाकी समस्या हल न हो सकी। हल होती भी तो कैसे, उनका हृदय तो किसी प्रेमीभक्तकी खोजमें था जो उन्हें भक्ति-रसका पान करा कर उनके जीवनको सरस और भगवत् प्रेममें सराबोर करा दे।

वटपत्रशायी भगवान्‌की आज्ञासे विष्णुचित्तका राजसभामें आगमन

विष्णुचित्त दार्शनिक पण्डित नहीं थे, किन्तु भगवान्‌के परम भक्त थे। भगवत् सेवा और भगवत् गुणगान करना ही उनके जीवनका एकमात्र व्रत था। अतएव वे पण्डितोंके भी चूड़ामणि थे। वटपत्रशायी भगवान् उनको वल्लभदेवकी राजसभामें जानेके लिए बार-बार हठ करने लगे। दिव्यसूरि महाशय (विष्णुचित्त) अपनेमें पाण्डित्यका सर्वथा अभाव जानकर राजसभामें जाना नहीं चाहते थे। उन्होंने भगवान्‌को अपनी अयोग्यताकी बात निवेदन की। परन्तु वटपत्रशायी भगवान्‌ने कहा—'तुम इस बात की कोई चिन्ता न करो। तुम उस राससभामें जाओ और अवश्य जाओ। बाकी रही पाण्डित्यकी बात, सो मैं उसे सँभाल लूँगा।' आखिर विष्णुचित्त भगवान्‌की आज्ञा टाल न सके। वे राजसभाको चल पड़े।

विष्णुचित्तका सम्मानके साथ सभामंडपमें आगमन और उनके उपदेश

विष्णुचित्त जब मदूरा पहुँचे तो इनकी बड़ी आवभगत हुई। राजा और मन्त्री दोनों सभाभवनके द्वारसे अभिवादनकर बड़े सम्मानके साथ उनको सभामंडपमें ले गए। वहाँ की पण्डित-मण्डलीमें विष्णुचित्त नक्षत्रोंमें चन्द्रमाकी तरह सुशोभित हुए। शास्त्रज्ञानसे अनभिज्ञ एक अवैदान्तिक मालाकारका ऐसा सम्मान देखकर उपस्थित पण्डित-मण्डलीको बड़ी ईर्ष्या हुई। किन्तु विष्णुचित्तके मुखसे शास्त्रोंके अतीव निगूढ़ उपदेशोंको सुनकर सारी सभा विस्मित रह गयी। राजा और श्रोतृमण्डलीके साथ अभिमानी पण्डित-मण्डली भी उनकी अपूर्व भक्तिके उपदेशोंको सुनकर कृतार्थ हो गयी। सभी लोग विष्णुचित्तकी भूरि-भूरि प्रसंशा करने लगे। ऐसा क्यों न हो, स्वयं भगवान्‌ही जिसके सहायक हों, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं।

उपाधि लाभ

विष्णुचित्तके उपदेशोंसे राजा बड़े प्रभावित हुए। विष्णुचित्तको विविध अलंकारोंसे सजाए हुए हाथी पर बैठाकर खूब धूम-धामके साथ एक जुलूस निकाला गया। फिर राजाने उनको 'ब्राह्मण पुङ्गव' या 'भट्टपिराण' की उपाधिसे विभूषित किया। विष्णुचित्तने जनसाधारणको अपने साथ 'तिरुप्पल्लाण्डु' नामक स्तव पाठ करनेके लिए कहा। आनन्दसे विभोर होकर सब लोग उनके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवानका स्तव करने लगे। उनके मिले हुए स्वरसे दिशाएँ गूँज उठीं, वहाँ की भूमि पवित्र हो गयी और सभी लोग कृतार्थ हो गये। ब्राह्मण-मण्डली तथा अन्य सभी लोग विष्णुचित्तकी सर्वज्ञता तथा वेदरहस्यज्ञताका उल्लेखकर मुक्तकंठसे प्रसंशा करने लगे।

विष्णुचित्त द्वारा भगवानको समस्त राजद्रव्यका समर्पण

राजाने विष्णुचित्तको उपहारमें बहुतसा सोना तथा अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुएं भेंट की। विष्णुचित्त राजासे विदा लेकर विल्लीपुत्तूर लौट आए और राजा द्वारा प्राप्त समस्त द्रव्योंको वटपत्रशायी भगवान्‌के सामने रखकर उनको समर्पण कर दिये। वे स्वयं पहले की तरह माला-सेवाके द्वाराही अपनी जीविका निर्वाह करने लगे। लौकिक गौरव और पार्थिव अहंकार उन्हें कभी भी स्पर्श न कर सके।

सिद्धसेवा और उनके रचित ग्रन्थ

उन्होंने अपनेको कृष्णके चरणोंमें समर्पित कर दिया। कृष्ण-प्रेममें मत्त होकर उन्हें अब संसारकी सुध-बुध न रही। वे अपने सिद्धस्वरूपमें भगवान्‌के

साथ अप्राकृत सम्बन्ध प्राप्तकर रातदिन कृष्ण-सेवानन्दमें अपना दिन बिताने लगे । गोदादेवीसे सम्बधित इनके जीवन-चरित्रकी जानकारीके लिये 'गोदादेवी' नामक लेख पढ़ना चाहिये । इनके जीवन-में—कृष्णलीलामें गोपसखाके रूपमें प्रवेश किये हुए पुरुषोंके जैसे, कई भाव दिखलायी पड़े थे । उन्होंने तमिल भाषामें 'तिरुमङ्गि' नामक एक काव्यग्रन्थकी रचना की है जिसमें कृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सरस और मधुर वर्णन किया गया है ।

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

प्रवृत्ति और निवृत्ति

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या १२, पृष्ठ २७१ से आगे]

अब प्रश्न हो सकता है कि परमेश्वरने जीव-समूहको उस अप्राकृत धाममें न रखकर इस असम्पूर्ण जगतमें क्यों रखा ? यदि जीव उस धामके ही उपयुक्त सृष्ट किये गये हों तब क्या कारण है कि वे वहाँ नहीं रह सके ? विश्वास और युक्ति इसका भी उत्तर देंगे ।

समाधिवृत्ति द्वारा ही अप्राकृत-तत्वकी अनुभूति सम्भव है

हे भागवत महोदयों ! आप लोग अपनी आत्माके रहस्यमय स्थानमें एक बार स्थिर-चित्त होकर बैठें और समाधियोग द्वारा इस तत्त्वका विचार करें । समाधिके अतिरिक्त आप्राकृत तत्त्वका कोई भी भाव उपलब्धि नहीं किया जा सकता । जो लोग समाधिवृत्तिकी आलोचना नहीं करते उनके लिये आत्म-तत्त्वका ज्ञान नितान्त दुरुह होता है । समाधि द्वारा जीव अपनी बाहरी द्वारोंको बन्द कर आन्तर वृत्तियोंके द्वारा अप्राकृत धाममें विचरण करते हैं और वहाँ अप्रकृत तत्त्वका साक्षात् दर्शन करते हैं । जब हम समाधियोगमें उस परम पुरुष सच्चिदानन्द कृष्णका दर्शन करते हैं, हमारा अन्तःकरण विमल प्रेमसे ओतप्रोत हो जाता है तथा प्रेमानन्दसे विभोर हो जाता है ।

समाधियोगमें पूर्व अपराधोंके लिये अनुताप होता है

परन्तु उस समय हमें अपने पूर्व अपराधोंके लिये अनुताप होता है तथा विषय-भोगकी कामनासे परिचालित होकर हमने मायाको स्वीकार कर जो अपकर्म किया है उसके लिये भी बड़ी लज्जा अनुभव होती है । हृदय दुःखकी ज्वालासे तड़पने लगता है । उस समय हम अनुताप करते हैं कि, हाय ! हमने ऐसे पूर्णानन्दकी अवज्ञा कर आखिर मायाके इस क्षुद्रानन्द में प्रवेश क्यों किया ? ऐसे करुणावरुणालय परमेश्वरको परित्याग कर हमने इस क्षुद्र जड़ सुखकी कामना ही क्यों की ? परन्तु परमेश्वर कितने दयालु हैं । उन्होंने हमारा कभी परित्याग नहीं किया, बल्कि अपने धामके साथ हमारे निकट सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं । चाहे हम किसी अवस्थामें पतित क्यों न हों, वे साथ-ही-साथ हमारे पीछे-पीछे चलते हैं । केवल उनकी ओर हमारे देखने भरकी आवश्यकता होती है, कि वे अपना लेते हैं । भाव समाधिके समय मनके अन्दर हमे ऐसा प्रतीत होता है—इसका कारण क्या है ? इसका कारण तो यह प्रत्यक्षरूपमें समझ पड़ता है कि हमने कभी-न-कभी भगवानके निकट अवश्य ही कोई अपराध किया है ।

जीवोंके जगत्में प्रवेशका कारण

महाप्रभुने सनातन गोस्वामीको कहा है—

कृष्ण-नित्यदास, जीव ताहाँ भूलि गेल ।
एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

अर्थात् जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्य दास है । इस कृष्णदासत्वको भूल जाना ही उसका दोष है । इसी दोषके कारण माया जीवको दण्ड देनेके लिये

अपने जालमें आबद्ध कर लेती है। उपनिषद्स्वरूप महाप्रभुकी उपरोक्त वाणियोंका तात्पर्य यह है कि जीव कृष्णका नित्यदास है। उसका स्वरूप ही कृष्ण-भक्ति है। परन्तु किसी समय वह अपने स्वरूपको अर्थात् कृष्णभक्तिको भूलकर अपनी भोग-कामनाओंके अधीन हो गया। उसी समयसे वह ब्रह्माण्डरूपी मायाके कारागारमें बन्द होकर तरह-तरहके कष्टोंको भोगने लगा है।

ब्रह्माण्डमें जीवोंका स्थितिकाल उनके दण्ड भोगनेका समय है

इस असम्पूर्ण मायिक ब्रह्माण्डमें जीव अपनी इन्द्रियोंसे नाम-मात्रके विषय-सुखोंको भोगते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। इस ब्रह्माण्डमें जीवोंका वास करना क्या है, मानो अपने पिछले अपराधोंका दण्ड भुगतना है। जीव अपने कर्मके अनुसार यहाँ नाना-प्रकारके दुःखोंका भोग करते हैं। इस ब्रह्माण्डमें हमारी जितनी ही अधिक भौतिक उन्नति होती है, हम उतने ही अधिक मायाका दृढ़ बन्धन स्वीकार करते हैं। इस ब्रह्माण्डकी उन्नति जीवोंके सुखका कारण भी नहीं है; बल्कि यह जीवोंकी पतितावस्था है। इस सत्यको सभी देशोंके सभी शास्त्रकारोंने एक वाक्यसे स्वीकार किया है।

कृष्ण-विस्मृति ही बन्धनका कारण है

ईसाई धर्ममें आदमका जैसे पतन हुआ था, उसे सभी जानते हैं। ज्ञान-वृक्षका फल चखना ही उसके पतनका कारण था। श्रीकृष्णकी अधीनताका परित्याग कर जो लोग अपने ज्ञानके द्वारा स्वाधीन होकर भक्ति-सुखका परित्याग कर देते हैं उनका कल्याण ही कहाँ? जीव कृष्णका दासत्व छोड़कर शैतान अर्थात् मायाके चंगुलमें फंस जाता है। इस तरह नाना प्रकारके कष्टोंको भोग करता है। इसे कुरानने भी स्वीकार किया है। भगवद्विस्मृति जीवोंके इस स्वतः-सिद्ध सन्तापका मूल कारण है। इसका समर्थन समस्त देशोंके सभी शास्त्र एक स्वरसे करते हैं। इस स्वतः-सिद्ध प्रत्ययको स्वीकार करने पर भी यदि उससे किसी विशेष सत्यका अनुसन्धान न किया गया तो हमारी युक्ति-शक्तिकी सार्थकता ही क्या रही? हम पशुओंसे किस विषयमें श्रेष्ठ रहे?

कृष्ण-विस्मृतिका कारण—स्वतन्त्रता, उसके सदुपयोगसे उन्नति और दुरुपयोगसे संसारमें प्रवेश

यहाँ प्रतिवादी फिर प्रश्न कर सकते हैं कि जब जीव परमेश्वरके नित्यदास हैं तब उन्होंने परमेश्वरका दासत्व छोड़ क्यों दिया और परमेश्वरने उनमें भूलनेकी प्रवृत्ति ही आखिर क्यों दे दी? इस विषयका समाधान करनेके लिये सबसे पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि सम्पूर्ण ज्ञानका आकर जो स्वतः-सिद्ध आत्म-प्रत्यय है उसे समाधिके अतिरिक्त किसी प्रकार भी जाना नहीं जा सकता है। अतएव हे भागवत मण्डलि! एकबार फिर समाधियोगके द्वारा आत्माके अन्तःपुर धाममें प्रवेश करें—

वहाँ संकर्षणके मुखसे भगवत्तत्त्वकी अशेष निर्झरणी निरन्तर प्रवाहित होती है। जैसे सनकादि ऋषियोंने भगवान् संकर्षणके निकट सात्त्वती श्रुति भागवतका श्रवण किया था, वैसे ही आपलोग भी श्रवण करें। विशुद्ध सत्त्वमय आत्मा संकर्षण श्रीअनन्तदेव कहते हैं—'सुनो, परमेश्वर सर्वमङ्गलमय हैं। वे जीवोंकी अनन्त उन्नतिकी कल्पना करते हैं। इसलिये उन्होंने जीवोंके स्वभावको अपने दासत्वमें बदल दिया। अब कृष्णदासत्व ही जीवोंका स्वभाव बन गया। दासत्व-सुखमें मग्न होकर जीव परमानन्द-के साथ अपना समय बिताने लगा। किन्तु जीवोंमें इस दासत्वके प्रति यदि श्रद्धा न हुई तब उनकी अधिकतर उन्नति नहीं हो सकती। परम करुणामय जगदीश्वरने जीवोंको स्वाधीनतारूप एक अनमोल रत्न दान दिया है। इस स्वाधीनताका सदुपयोग कर जो जीव ईश्वरकी भक्तिमें लग गये, वे उन्नत अवस्थाके अधिकारी बन गये। किन्तु जिन लोगोंने उस स्वाधीनताका दुरुपयोग कर विषय-भोगकी कामनाओं का दासत्व अंगीकार कर लिया तथा कृष्णभक्तिका

परित्याग कर दिया, वे गुणमयी माया द्वारा आकर्षित हो जाते हैं तथा मायाकी सेवामें मत्त रहनेके कारण कभी दुःख और कभी सुख भोग करनेके लिये प्राकृत देहको धारण कर प्राकृत जगत्में प्रवेश करते हैं।

जीव स्वयं अपने बन्धनोंका कारण है

ये बातें पुरञ्जन उपाख्यानमें पायी जाती हैं। जो लोग परमेश्वरमें विश्वास तो करते हैं, परन्तु इन सब विषयों पर विचार करनेका कष्ट नहीं करते, वे इन सिद्धान्तोंसे ही सन्तोष कर लेते हैं। जो लोग केवल परमेश्वरकी असीम दयालुता पर विश्वास कर भजनानन्दमें मग्न रहते हैं, वे निर्बोध होने पर भी सुखी होते हैं। और जो लोग इन तत्त्वोंपर विशेष रूपसे विचार कर पूर्वोक्त सिद्धान्त करते हैं, उनका भी दुख दूर हो जाता है। परन्तु जो लोग इन दोनोंके बीचका रास्ता लेते हैं, वे बड़े दुःखी होते हैं। जैसे विदुरजी कहते हैं—

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

(श्रीमद्भा० ३।७।१७)

अब विचार कर देखनेसे प्रतीत होता है कि जीवके क्लेशका कारण स्वयं जीवके अतिरिक्त और कोई भी दूसरा नहीं है। परमेश्वर हमलोगोंके प्रति अपार करुणा प्रकाश कर हमारा उद्धार करनेके लिये प्राकृत जगत्में आविर्भूत होकर अपनी व्रजलीला प्रकट करते हैं। अहा! उनकी दयालुताका अन्त नहीं। यदि व्रजलीलाका यथार्थ तत्त्व जीवोंके हृदयमें स्पष्ट-रूपसे उपलब्ध हो जाय तो उनका दुःख क्या रह सकता है? संसारमें आर्यधर्मके नामपर वेद जिस कर्मकाण्डकी व्याख्या करते हैं, उससे जीवोंका यथार्थ कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

(क्रमशः)

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

शरणागति

आत्मनिवेदन—ममतास्पद देहसमर्पण (कायिक)

[ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

मेरा कहनेको प्रभो नहीं रहा कुछ और।
मातु पिता भ्राता तुम्हीं मित्र सभी की ठौर॥
दारा कन्या मित्र सुत सभी तुम्हारे दास।
तुम्हरे ही सम्बन्ध से मैं सब करूँ प्रयास॥
धन जन तेरा ही प्रभो तेरा ही घर द्वार।
तेरे नाते मैं करूँ सेवा सकल सम्भार॥
तुम्हरी सेवा हेतु ही धन अर्जन व्यापार।
तुम्हरे नाते व्यय करूँ तुम्हरे ही संसार॥
भला-बुरा जानू नहीं सेवा करूँ तुम्हार।
तुम्हरे इस संसारका विषयी पहरेदार॥
दरश श्रवणकी वासना भूख-प्यास औ ज्ञान।
तुम्हरी इच्छासे सभी इन्द्रिय-चालन मान॥
अपने सुखके हेतु मैं करूँ नहीं कुछ कार।
तेरे भक्तिविनोदको तेरा ही सुख सार॥

मायावादकी जीवनी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २, संख्या १, पृष्ठ ३०० से आगे]

शंकराचार्यके बाद १००० वर्षोंका मायावाद

शंकरका प्रभाव

भक्तावतार शङ्करसे लेकर भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव तक लगभग १००० वर्षोंका अन्तर है। यहाँ इन बीचले वर्षोंके मायावादकी अवस्थाका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

बुद्धका कड़ुवा अवैदिक शून्यवाद शङ्करके द्वारा केवल ऊपरसे वैदिक बूरेसे लपेटा जाकर जनतामें पुनः खूब आदर पाने लगा। इसका फल यह हुआ कि बौद्धधर्मकी जड़ प्रत्यक्षरूपमें उखाड़ फेंके जाने पर जन-समुदाय अपनेको बौद्ध कहनेके बदले हिन्दू कहने लगा। साधारणतः लोग हिन्दूधर्म कहनेसे शङ्कराचार्य-के प्रचारित धर्मको ही हिन्दू धर्म समझते हैं। अनेक पाश्चात्योंने भी भ्रमसे शंकरके प्रचारित धर्मको ही हिन्दू धर्म मान कर खण्डन किया है। जैसा भी हो शंकराचार्यके आविर्भावसे यह एक बड़ा लाभ हुआ है—इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा? किन्तु अचिन्त्य-द्वैताद्वैत सिद्धान्तभूत भगवान्की नित्य-सेवाको ही यथार्थ हिन्दूधर्म कहा जाता है।

इन एक हजार वर्षोंमें मायावादकी अवस्था नितान्त शोचनीय रही है। कहीं इसे बेतरह मुँहकी खानी पड़ी हैं, तो कहीं इसकी धज्जियाँ उड़ायी गई हैं और कहीं-कहीं तो इसने प्राणोंके लेकर भाग-छिपनेमें ही अपनी खैरियत समझी है। हम यहाँ इसीका संक्षिप्त परिचय प्रदान कर रहे हैं।

यादवप्रकाश

पद्मपाद, सुरेश्वर, वाचस्पति मिश्र आदि विख्यात मायावादियोंके बाद यादव प्रकाश ही मायावादियोंके सर्वप्रधान आचार्य हुए। ये दक्षिण भारतके काञ्चि-नगरमें रहते थे। उस समय यामुनाचार्य श्रीवैष्णव सम्प्रदायके एक अलौकिक मेधासम्पन्न पुरुष थे। इनकी अलौकिक विद्वता और असाधारण तर्क-पटुता देख-कर यादव प्रकाशको उनके साथ आमने-सामने शास्त्रार्थ करनेका साहस न हुआ। आचार्य रामानुज इन्हीं यामुनमुनिके शिष्य थे। इन्होंने यादवप्रकाशके निकट वेदान्तका अध्ययन करते समय शङ्करमतके अनेक दोष दिखलाये। इस पर यादव प्रकाशने अपने मतकी पुष्टिके लिये खूब चेष्टा की, पर रामानुज-की अकाट्य युक्तियोंके सामने उनकी एक न चली। रामानुजकी ऐसी प्रखर प्रतिभा देखकर वे ईर्ष्यासे जलने लगे तथा रामानुजको मार डालनेके लिये एक षड्यन्त्रकी रचना की। आचार्य रामानुजको यादव-प्रकाशके इस षड्यन्त्रका पता चल गया। फिर भी उन्होंने केवल क्षमा ही नहीं किया अपितु उनको कृपाकर अपना शिष्य बना लिया। रामानुजकी ऐसी महान् उदारता और परमवैष्णवतासे यादवप्रकाश मुग्ध हो गए। उनका स्वभाव पूर्णतया बदल गया। अब वे वैष्णवोचित जीवन बिताने लगे।

आचार्य शङ्करके जीवनमें भी कुछ ऐसी ही घटनाएँ उपस्थित हुई थीं। परन्तु आचार्य शङ्कर अपने प्रतिपक्षियोंका हृदय न जीत सके। अभिनव गुप्तके प्रति कृपा न कर उसका वध किया गया था। इस विषयमें रामानुज आचार्यका चरित्र शङ्कराचार्यकी तुलनामें अधिक उज्ज्वल, महान् और माधुर्यमय प्रतीत होता है। रामानुजाचार्यने यादवप्रकाशको—जो उन्हें मार डालना चाहता था, केवल क्षमा ही नहीं किया, अपितु कृपाकर उसका उद्धार भी कर दिया। यह घटना श्रीरामानुजाचार्यको शङ्कराचार्यकी अपेक्षा अधिक प्रतिभा-सम्पन्न और सहिष्णु प्रमाणित करती है। इस तरह भगवद्भक्तोंकी श्रेष्ठता सभी समयोंमें सभी क्षेत्रोंमें समानरूपमें घोषित है। उस समय रामानुजकी प्रबल युक्तियोंसे खण्डित-विखण्डित होकर मायावादकी बड़ी दुर्गति हुई। इस तरह विशिष्टाद्वैत-वादकी विजय-वैजयन्ति सर्वत्र लहराने लगी।

श्रीधरस्वामी

श्रीधरस्वामीका जन्म गुजरात प्रदेशमें हुआ था। उनके आविर्भाव-कालके सम्बन्धमें कोई प्रामाणिक सामग्री न होनेके कारण कुछ अधिक कहनेका उपाय नहीं। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि अद्वैतवादियोंने उनकी स्थितिकालके सम्बन्धमें जो अटकलें लगायी हैं वे बिलकुल निराधार हैं। मध्वमुनिने अपने ग्रन्थोंमें उनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है—केवल इसीके आधारपर उनका समय मध्व के बाद स्थिर करना युक्तियुक्त नहीं। श्रीधरस्वामीने वेदान्त या उपनिषद् आदिका कोई भाष्य नहीं लिखा है। यही कारण है कि मध्वाचार्यने अपने ग्रन्थोंमें उनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, अन्यथा वे अवश्य ही श्रीधरस्वामीका उल्लेख किये होते। श्रीधरस्वामीने अपने गीता-भाष्यमें एक शङ्करका ही उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि वे शङ्करके पश्चात् और मध्वसे पूर्व किसी समय वर्त्तमान थे। श्रीरामानुजाचार्यने प्रधानतः विष्णुपुराणका अवलम्बन कर अपने श्रीभाष्यकी रचना की है। आचार्य श्रीधरस्वामीने भी विष्णुपुराणकी एक टीका लिखी है। यदि रामानुजको इनकी टीकाका पता होता, वे अवश्य ही अपने ग्रन्थोंमें उसका उल्लेख करते तथा उसके वचनोंको प्रमाण-स्वरूप उद्धृत करते। किन्तु देखा जाता है कि न तो रामानुजने श्रीधरस्वामीका कहीं उल्लेख किया है और न श्रीधरस्वामीने ही श्रीरामानुजका कहीं उल्लेख किया है। ऐसी अवस्थामें यह निश्चित रूपमें कैसे कहा जा सकता है कि इनमें कौन आगे हुआ और कौन पीछे? मायावादी अद्वैतपंथी लोग आज भी उनको अपनी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त बनानेके लिये खींचा-तानी कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि श्रीधरस्वामीने पहिले-पहल किसी अद्वैतवादीके सङ्गके प्रभावसे अद्वैतमत ग्रहण कर लिया था। इस बातका कुछ-कुछ आभास उनकी रचित टीकाओंसे मिलता है। उस समय परमानन्द तीर्थ नामक एक वैष्णव संन्यासी शुद्धाद्वैत मतका प्रचार करते थे। ये श्रीनृसिंह देवके उपासक थे। शुद्धाद्वैतके आदि आचार्य श्रीमद्विष्णु स्वामीका स्थितिकाल शङ्कराचार्य से बहुत पहले है। वे आदिविष्णु स्वामीके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्हींकी शिष्य-परम्परामें परमानन्द तीर्थ एक संन्यासी प्रचारक थे। इन्हींकी कृपासे श्रीधरस्वामी ने अद्वैतमतका परित्याग कर शुद्धाद्वैत मतमें दीक्षा ग्रहण की थी। अब इनको इस बातका विश्वास हो गया था कि अद्वैतमतके शुष्कज्ञान द्वारा यथार्थ मोक्ष प्राप्तकरना कठिन ही नहीं, अपितु बिलकुल असंभव है तथा भगवद्भक्ति ही मोक्षका एकमात्र उपाय और उपेय, दोनों है। उन्होंने गीताकी टीकामें लिखा है—

'श्रुति-स्मृति-पुराण-वचनान्येवं सति समञ्जसानि भवन्ति, तस्माद्भगवद्भक्तिरेव मुक्तिहेतुरिति सिद्धम्। परमानन्द-श्रीपादाब्ज-रजःश्री-धारिणाधुना श्रीधर-स्वामि-यतिना कृता गीता-सुबोधिनी।'

यदि मायावादियोंका यह कथन सत्य मान भी लिया जाय कि श्रीधरस्वामी मायावादी सम्प्रदायके हैं—तो क्या अद्वैतवादी उनके गीताके उपरोक्त सिद्धान्तको स्वीकार कर सकते हैं? यदि वे स्वीकार नहीं करते तो उनको मायावादी सम्प्रदायके अन्तर्गत घसीटनेकी व्यर्थ चेष्टा ही क्यों करते हैं?

श्रीधरस्वामीकी गीताकी टीकाके सम्बन्धमें एक आश्चर्यजनक इतिहास है। वह घटना इस प्रकार है—एक समय श्रीधरस्वामी समस्त तीर्थोंका भ्रमण करते-करते काशीमें पधारे। उन्होंने वहाँ कुछ दिनों तक ठहर कर गीताकी सुबोधिनी नामक एक टीका लिखी और सर्वप्रथम वहाँके पण्डित-समाजमें उसे चालू करनेके लिये प्रयत्न किया। मायावादियोंने टीकाके सिद्धान्तोंको अद्वैतवादका विरोधी देख बड़े चिन्तित हुए और उसमें दोष निकालनेके लिये नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे। किन्तु श्रीधर स्वामीने वहाँकी मायावादी पण्डित-मण्डलीको अपने प्रखर पाण्डित्य और तर्क-पटुतासे परास्त कर दिया। इस पर भी उनलोगोंने उनकी टीकाको मान्यता न दी। अन्तमें दोनों पक्षके लोग मिलकर विश्वनाथके निकट जाकर टीकाकी मान्यताके सम्बन्धमें उनको अपना निर्णय देनेके लिये प्रार्थना की। वैष्णवराज शम्भुने पण्डितोंको

स्वप्नमें अपना निर्णय निम्नलिखित श्लोकमें बतलाया था—

"अहं वेत्ति शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा ।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः ॥"

इस श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीधर स्वामीने अद्वैतवादियोंको परास्त किया था । इस तरह परमानन्द तीर्थ द्वारा श्रीधर स्वामीकी और श्रीधरस्वामी द्वारा अन्यान्य मायावादियोंकी पराजय हुई थी ।

श्रीबिल्वमङ्गल

दक्षिण प्रदेशमें कृष्णवेन्वानदीके तट पर एक ग्राममें श्रीबिल्वमङ्गलका जन्म हुआ था । पिताका नाम रामदास था । किसी-किसीके मतसे बिल्वमङ्गलका पूर्व नाम शिह्लनमिश्र या चित्सुखाचार्य था । वल्लभ-दिग्विजय ग्रन्थके अनुसार इनका उदय काल शककी आठवीं शताब्दी है । ये अपने पूर्व जीवनमें अद्वैतवादी थे । पीछे मायावादको परित्यागकर वैष्णव-त्रिदण्डि-संन्यास ग्रहण किया था । शंकर सम्प्रदायकी द्वारका मठकी परम्परा-तालिकामें चित्सुखाचार्य (कल्यब्द २७१५) बिल्वमङ्गलका नाम पाया जाता है । 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थके अनुसार बिल्वमङ्गल द्वारकाधीशकी स्थापना करनेवाले राज-विष्णुस्वामीके प्रधान शिष्य थे, और सात सौ (१) वर्षों तक वृन्दावनमें ब्रह्मकुण्डके तट पर भजन किया था । इन्होंने 'कृष्णकर्णामृत' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की है; इसीसे इनका नाम लीलाशुक हुआ । बिल्वमङ्गलने किस तरह अद्वैतमतका परित्याग किया तथा किस तरह वे कृष्ण-सेवाके माधुर्य द्वारा आकृष्ट हुए थे—इसका वर्णन उन्होंने अपने स्वरचित इस श्लोकमें किया है—

"अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्याः
स्वानन्द सिंहासनलब्धदीक्षाः ।
हठेन केनापि वयं शठेन
दासीकृता गोपवधू-विटेन ॥"

अर्थात् अद्वैतपथके पथिकों द्वारा सेवित और आत्मानन्दके सिंहासनपर आरूढ़ होकर भी मैं गोपी-लम्पट कृष्ण-नामके किसी शठ द्वारा बलपूर्वक उनकी दासी बनायी गयी हूँ । (क्रमशः)

ग्रन्थ-चक्रवर्त्ती---श्रीमद्भागवत

जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने कहा है—'श्रीमद्भागवत आधुनिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि यह वेदों-की तरह नित्य और प्राचीन है । पूज्यपाद श्रीधर-स्वामीने 'ताराङ्कुरः सज्जनिः' शब्दके प्रयोग द्वारा श्रीमद्भागवतका नित्यत्व स्थापन किया है । समस्त निगमशास्त्ररूप वृक्षका चरम फल है यह श्रीमद्-भागवत । श्रीवेदव्यासने वेदान्त सूत्रकी रचना कर स्वयं उसका भाष्य भी लिखा । उसी भाष्यका नाम श्रीमद्भागवत है । श्रीमद्भागवतके सिद्धान्त वेदान्त-के ही सिद्धान्त हैं । श्रीमन्महाप्रभुका कहना है कि सूत्रोंका ठीक-ठीक अर्थ तभी पाया जा सकता है जब कि सूत्रोंका रचयिता अपने सूत्रोंपर स्वयं भाष्यकी रचना करे । अतएव जीवोंके लिए भागवतरूप भाष्यको ही वेदान्तकी वाणी समझकर ग्रहण करना श्रेयस्कर होगा । परब्रह्मके अचिन्त्य भाव-समूह व्यासदेवकी समाधिमें प्रतिभात होकर सच्चिदानन्द-सूर्यरूपी पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवत प्रकाशित है । जिनको आँखें हैं, वे इसका दर्शन करें, जिनको कान हैं, वे इसका श्रवण करें और जिनको मन है, वे इसके सत्योंका निदिध्यासन करें । पक्षपात-शून्य हुए बिना अखिलरसामृत-सिन्धु श्रीमद्-भागवतका माधुर्य आस्वादन नहीं किया जा सकता ।

व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुर कहते हैं—'भगवान, भक्त और भागवत अभिन्न हैं । जो

इनमें भेदकी कल्पना करते हैं, उनका नाश अवश्यंभावी है। भागवतकी पूजा भगवान्‌की ही पूजा है। इसका सेवन करनेसे भगवत् प्रेमकी प्राप्ति होती है।'

परमधर्मकी कथा एकमात्र श्रीमद्भागवतमें ही पूर्णरूपसे व्यक्त है। श्रीमद्भागवतमें अपधर्म और छलधर्मोंका खण्डन कर अकैतव अर्थात् निर्मल नित्य धर्मकी प्रतिष्ठा है। इसीलिए भागवत श्रवण करने से आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्ति और नित्यशान्तिरूप परममङ्गलकी प्राप्ति होती है। इस घोर धर्मसंकटके युगमें श्रीमद्भागवत ही जीवोंके एकमात्र रक्षक हैं। कलिकालमें अधर्मकी प्रगति और धर्मका नाश होते देखकर श्रीनारद भक्तिदेवीसे कहते हैं—

कुकर्माचरणात् सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ।
पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥
विप्रैर्भागवती वार्त्ता गेहे गेहे जने जने ।
कारिता धनलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥
अत्युग्रभूरिकर्म्माणो नास्तिका दाम्भिका जनाः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥
कामक्रोध – महालोभ – तृष्णाव्याकुल–चेतसः ।
तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥
मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात् पाषण्डसंश्रयात् ।
शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥
पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रोत्पादनदक्षास्तेऽप्यदक्षा मुक्तिसाधने ॥
नहि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरम् ।
एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥
(पद्मपुराण उ. ख. ६३ अ.)

अर्थात् आजकल (कलिकालमें) लोगोंकी कुकर्ममें प्रवृत्ति होनेके कारण सभी वस्तुओंका सार निकल गया। पृथ्वीके सारे पदार्थ बीजहीन भूमिके समान हो गए। ब्राह्मण केवल अन्न-धनादिके लोभवश घर-घर और जन-जनको भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इसलिए कथाका सार चला गया। तीर्थोंमें नाना प्रकारके अत्यन्त पाप कर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी रहने लगे हैं, इसलिए तीर्थोंका प्रभाव जाता रहा। जिनका चित्त निरन्तर काम क्रोध, महान् लोभ और तृष्णासे तपता रहता है, वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे हैं; इसलिए तपका सार भी निकल गया। मन निगृहीत न होनेसे तथा लोभ दंभ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण शास्त्रका अभ्यास न करनेसे ध्यानयोगका फल मिट गया। पण्डितोंकी यह दशा है कि वे अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं, उनमें संतान पैदा करनेकी ही कुशलता पाई जाती है, मुक्तिके साधनमें वे सर्वथा अज्ञ हैं। सम्प्रदायानुसार प्राप्त हुई वैष्णवता भी कहीं देखनेमें नहीं आती। इस तरह जगह-जगह वस्तुओंका सार लुप्त हो गया।

इस प्रकार देवर्षिनारद द्वारा वर्णित कलिके दोषोंके लिए परमौषधि-स्वरूप परव्योमसे प्रकटित भगवद्वाणीका उल्लेख करते हुए श्रीसनत्कुमार ने कहा—'ऐसी अवस्थामें यदि भक्तलोग श्रीमद्भागवतकी कथाका जगत्‌में पुनः प्रचार करें तो जगत्‌के असहाय जीवों का कल्याण हो सकता है। सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनि से कलियुग के सारे दोष नष्ट हो जायँगे। यथा—

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनौ ।
कलिदोषो इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥
(पद्मपुराण उ. ख: ६३ अ.)

सनत्कुमार श्रीमद्भागवतके माहात्म्यके सम्बन्धमें और भी कहते हैं—

ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा,
सदा दुराचाररता विमार्गगाः ।
क्रोधाग्निदग्धा कुटिलाश्च कामिनः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥
सत्येन हीनाः पितृमातृदूषका–
स्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ।
ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः
सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥
(पद्मपुराण)

अर्थात् जो लोग तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं, उलटे मार्गों-

में चलते हैं तथा जो क्रोधी, कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें एक सप्ताह तक श्रीमद्-भागवतका श्रवण करनेसे पवित्र हो जाते हैं। इतना कहनेके बाद सनत्कुमारने नारदजीको एक पूर्व इतिहास सुनाया—

प्राचीन कालकी बात है—दक्षिण भारतकी तुंगभद्रा नदीके तट पर एक अतीव मनोरम नगर था। वहाँ एक सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। उस ब्राह्मणके गोकर्ण और धुन्धुकारी नामक दो पुत्र थे। उनमें गोकर्ण सर्वसद्-गुणसम्पन्न विद्वान्, परम विरक्त, धार्मिक, और प्रिय बोलनेवाले थे। धुन्धुकारी बड़ा दुश्चरित्र, आचार-हीन, क्रोधी, निर्दयी, वेश्यागामी और चोर था। वह पिता-माता को बहुत ही कष्ट देता और उनका धन चुरा कर वेश्याओंको दे आता। ब्राह्मण अपने दुष्ट पुत्र के व्यवहारसे बड़े दुःखी हुए और गोकर्ण-के उपदेशसे संसारकी असारता समझकर घरसे निकल पड़े। पिताके चले जाने पर धुन्धुकारीने सारा धन नष्ट कर दिया और अपनी माताको बहुत ही सताने लगा। उसके बर्त्तावसे दुःखी होकर माता धुन्धुलीने एक कुएँमें गिरकर प्राण त्याग कर दिये। गोकर्णने भी अब घरमें रहना उचित नहीं समझा। वे तीर्थयात्राके निमित्त घरसे निकल पड़े। अब धुन्धुकारीका रास्ता बिलकुल साफ था। वह वेश्याओं-को लेकर स्वच्छन्दतापूर्वक अपने ही घरमें रहने लगा तथा चोरी द्वारा उनका मन प्रसन्न रखता। एक दिन उसके पास बहुत धन देखकर लोभसे उन वेश्याओंने उसे बड़ी निर्दयता-पूर्वक मार डाला और उसके मृत शरीरको उसी घरमें एक जगह गाड़ कर दूसरी जगह चली गयीं। महापापी धुन्धुकारी मरकर प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ। अब प्रेतयोनिकी असह्य पीड़ा अनुभव कर वह अपने पूर्व कर्मोंके लिए पश्चात्ताप करने लगा। तथा निरुपाय होकर इधर-उधर भटकता हुआ कष्ट करने लगा।

इधर गोकर्ण तीर्थोंमें भ्रमण करते-करते रास्तेमें अपने भाईका मृत्यु-संवाद सुने। उन्होंने उसके उद्धारके निमित्त गयामें श्राद्ध किया और तीर्थयात्रा समाप्त कर घर लौट आये। वे जब रातमें अपने जनशून्य घरमें सो रहे थे, तब प्रेत बना धुन्धुकारी आकर उनके सामने खड़ा हो गया। गोकर्णने उससे पूछा—'तू कौन है और तेरी यह दशा किस प्रकार से हुई?'

धुन्धुकारी चेष्टा करने पर भी कुछ बोल न सका और चुपचाप रोने लगा। गोकर्णको आश्चर्य हुआ। उन्होंने हाथमें कुछ जल लेकर मंत्र उच्चारणकर उस प्रेतके ऊपर छिड़क दिया। जल पड़तेही प्रेतमें बोलनेकी शक्ति फूट पड़ी। उसने बड़े दीन शब्दोंमें अपनी सारी कहानी सुनाकर अपने उद्धारका उपाय पूछा। अपने भाईकी बात सुनकर गोकर्णने कहा—'भाई! मैंने तुम्हारे उद्धारके लिए गयामें श्राद्ध-पिण्ड दिया, किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, उससे भी तुम्हारा कोई उपकार न हुआ। अब मेरी समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ?'

यह सुनकर प्रेत बहुतही गिड़गिड़ाकर बोला,—'मैं महापापी हूँ। गयाके सैकड़ों श्राद्ध-पिण्ड भी मेरा उद्धार करनेमें समर्थ नहीं हैं। अब तुम मेरे निमित्त कोई दूसरा उपाय सोचो। तुम ही मेरे हितैषी हो। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। यह दुःख तुम्हारे अतिरिक्त किसे सुनाऊँ?'

गोकर्ण बड़े चिन्तित हुए। फिर बोले—'अच्छा इस समय तुम जाओ। तुम्हारे लिए कोई उपाय अवश्य सोचूँगा, डरो मत।

दूसरे दिन गोकर्ण वयोवृद्ध ज्ञानी व्यक्तियोंसे इस विषयमें परामर्श किया, किन्तु कुछ भी निर्णय न कर सके। आखिर कोई उपाय न देखकर सूर्य-से इस विषयमें पूछनेका निश्चय किया और तपके प्रभावसे उनकी गति रोककर उनकी स्तुतिकर उनसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा की। सूर्यदेव गोकर्ण-की प्रार्थना सुनकर सबके सामने ही स्पष्ट शब्दोंमें बोले—'हे गोकर्ण! सात दिनों तक श्रीमद्भागवत का श्रवण करनेसे तुम्हारे भाईकी मुक्ति हो सकती है। अतएव तुम भागवत-कथाका अनुष्ठान करो।

सूर्यदेवका उपदेश सुनकर गोकर्णने श्रीमद्भागवत-का सप्ताह-पाठ आरम्भ कर दिया। आसपासके गाँवों-के लोग एकत्रित हो गए। उस समय प्रेत भी कथा-मण्डपमें आकर बैठनेके लिए जगह ढूँढ़ने लगा वह पास ही खड़े किए गए सात गाँठोंवाले एक बाँस की जड़के छिद्रमें घुसकर बैठ गया और श्रद्धापूर्वक भागवती कथा श्रवण करने लगा। प्रथम दिनकी कथा समाप्त होते न होते ही बाँसकी एक गाँठ बड़ी कड़कड़ाहटके साथ फट गयी। दूसरे दिन दूसरी गाँठ और तीसरे दिन तीसरी गाँठ फट गयी। इस तरह सात दिनोंमें श्रीमद्भागवतकी कथा समाप्त होने पर बाँसकी सातों गाँठें फट गयीं और धुन्धु-कारी समस्त पापोंसे मुक्त होकर प्रेत-योनि त्यागकर दिव्य भगवत्पार्षदरूपको प्राप्त हो गया। वह श्रीमद्-भागवतके वक्ता अपने भाई गोकर्णके सामने आकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भाई गोकर्ण! तुम मेरे परम बन्धु हो। तुम्हारी कृपासे आज मैं इस दुःसह प्रेतयोनिसे उद्धार पा सका। अहो! यह प्रेत-पीड़ाको विनाश करनेवाली श्रीमद्-भागवतकी कथा धन्य है! धन्य है! इसका श्रवण करनेसे जीवोंके समस्त पाप धुल जाते हैं तथा वैकुण्ठ-की प्राप्ति हो जाती है। जो इस क्षण-भंगुर किन्तु अतीव दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर भी परम मङ्गल श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण नहीं करता, उसका जीवन-धारण करना व्यर्थ है। जो लोग इस दुस्तर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं—मुक्तिकी कामना रखते हैं अथवा अखिल-रसामृत-मूर्ति भगवान् कृष्णचन्द्रकी सेवा लाभ करना चाहते हैं, उन्हें श्रीमद्भागवतकी कथा सुननी चाहिए। अब मैं इस दिव्य शरीरको प्राप्तकर भगवान्के परमधाम-को जा रहा हूँ।' यह कहकर वह दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर वैकुण्ठको चला गया। भगवत्पार्षद जाते-जाते गोकर्णको कहते गए—'गोकर्ण! स्वयं गोविन्द आकर तुम्हें अपने परमधाम गोलोकमें ले जायँगे।'

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिमधुसूदन भागवत महाराज

सज्जन और भक्ति

कांत कंज विकसित करै, कुमुद कुमुदिनी-नाथ।
शंकर सज्जन करहि हित, देत मेघ जिमि पाथ॥
पितु रीझै सो पुत्र सत, सन्नारी पति हेत।
शंकर मित्र सु जानिये, दुःख में दुःख हर लेत॥
परिवर्तिनि संसारमें, मृत को है, को जात।
शंकर जन्म सराहिए, जासौं वंश सुहात॥
सुत वित कौ सुख नित लहै, नेह करैं नव नार।
भक्ति बिना भगवंतके, जगमें सभी असार॥
सत्साहित्य संगीत अरु, चौसठ कला प्रवीन।
भक्ति बिना नर सोह जिमि, हिमकर सुधाविहीन॥

—शंकरलाल चतुर्वेदी बी० ए, साहित्यरत्न

श्रीनिम्बादित्य और निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं

शास्त्रोंमें निम्बार्क-सम्प्रदायका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। चारों आचार्योंके अन्तर्गत निम्बादित्य स्वामीके नामका उल्लेख किसी-किसी पुराणोंमें मिलता है। इन्हीं निम्बादित्यको चतुःसन अर्थात् सनत्कुमारोंने अपने सम्प्रदायका आचार्य स्वीकार किया है,— निम्बार्कस्वामीको नहीं। कुछ लोग भविष्य-पुराणके कतिपय प्रक्षिप्त श्लोकोंके आधारपर निम्बादित्य और निम्बार्कको एक ही व्यक्ति प्रमाणित करनेका प्रयत्न करते हैं, किन्तु हम इस विषयमें उनसे सहमत नहीं हैं। यद्यपि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दीके कतिपय आचार्योंने निम्बादित्य स्वामीको ही निम्बार्क स्वामी कहा है, तथापि उन लोगोंका यह व्यावहारिक उल्लेख मात्र है, जिसका आधार एकमात्र जनश्रुति ही है। असलमें निम्बादित्य और निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं। जो लोग निम्बादित्यको एक अत्यन्त प्राचीन आचार्य मानते हैं वे उनको नारदका साक्षात् शिष्य बतलाते हैं। ऐसी अवस्थामें श्रीव्यासदेव और निम्बादित्य परस्पर गुरु-भाई लगते हैं। परन्तु निम्बार्क स्वामीको साक्षात् व्यासदेवका समसामयिक मानना कहाँ तक युक्ति-संगत अथवा ऐतिहासिक प्रमाणोंके अनुकूल है, उसे एक साधारण विवेचक भी समझ सकता है। युक्तिके लिए यदि इसे स्वीकार भी कर लिया जाय तो निम्बादित्य स्वामीको ही नारदके शिष्यरूपमें स्वीकार किया जा सकता है, निम्बार्क स्वामीको कदापि नहीं।

'आदित्य' शब्दका अर्थ 'अर्क' होता है, अतः कोई-कोई 'निम्ब + आदित्य' की जगह 'निम्ब + अर्क' का प्रयोग कर निम्बादित्यको ही निम्बार्क कहना चाहते हैं। परन्तु केवल इसी दृष्टिकोण के आधारपर प्राचीन निम्बादित्य और आधुनिक निम्बार्कस्वामीको एक व्यक्ति नहीं माना जा सकता। श्रीरामचन्द्रको रघुनाथ भी कहते हैं। यदि कोई उनको रघुपति कहता है तो उसमें किसीको भी कुछ आपत्ति नहीं हो सकती। वैसे ही यदि किसी वैष्णव-आचार्यने किसी जगह निम्बादित्यको निम्बार्क कहा हो, तो उसमें कोई विशेष आपत्तिकी बात नहीं है। फिर भी शास्त्रीय निम्बादित्यको ही निम्बादित्य मानना उचित है। आजकल कुछ नए-नए साम्प्रदायिक विद्वेषोंके कारण कोई-कोई आधुनिक निम्बार्कको ही प्राचीन निम्बादित्य स्थापन करना चाहते हैं। परन्तु उनका यह विचार किसी प्रकार भी युक्तियुक्त और ऐतिहासिक प्रमाणसिद्ध नहीं है। आजकल प्राचीन आचार्य निम्बादित्यका कोई भी ग्रन्थ अथवा सम्प्रदाय उपलब्ध नहीं होता। पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारतवर्षमें इस सम्प्रदायका कोई भी अस्तित्व नहीं पाया जाता। कहीं-कहीं दो-एक स्थानोंमें किसी वैषयिक कारणसे कोई-कोई मठाधीश अपनेको निम्बादित्य सम्प्रदायका मठाधीश कहते हैं, किन्तु ये लोग भी निम्बादित्य या निम्बार्क सम्प्रदायके महन्त हैं या नहीं—इस विषयमें मतभेद है।

बंगालके भूतपूर्व सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्रीयुत अक्षय-कुमारदत्तने भारतीय दर्शन और धर्म सम्प्रदायके इतिहासकी गवेषणा करनेके लिए सारे भारतका भ्रमण किया था। उस गवेषणामें उन्होंने १५० से लेकर २०० वर्ष पहले तक कहीं भी निम्बार्क सम्प्रदायका कोई अस्तित्व नहीं पाया था। उन्होंने केवल इसी बातका उल्लेख किया है कि प्राचीन कालमें इस नामका एक सम्प्रदाय प्रचलित तो था किन्तु वर्त्तमान कालमें उसका कोई अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। हम पंडित अक्षयकुमार दत्त महोदयके सिद्धान्तोंको सम्पूर्ण सत्य नहीं मानते, फिर भी हम उनके इस तथ्यसे सम्पूर्ण

*श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादकके एक पत्रके उत्तरमें श्रीश्रीगुरुमहाराजजी द्वारा लिखे गए पत्रसे सम्पादित। इस विषय का विस्तृत लेख पीछे प्रकाशित होगा। —सम्पादक

सहमत हैं कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दीके आरंभमें निम्बादित्य सम्प्रदाय अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था।

निम्बार्क सम्प्रदायमें जो 'पारिजात भाष्य' प्रचलित है उसके रचयिता निम्बादित्य स्वामी नहीं हैं। वेदान्तसूत्रके इस पारिजात भाष्यको श्रीनिवास आचार्य और केशव काश्मीरीने स्वयं लिखकर इसे निम्बार्क स्वामी द्वारा रचित बतलाकर प्रचार किया है। पूर्वी बंगालके बरिसाल जिलाके प्रज्ञानानन्द सरस्वतीने घोर परिश्रम कर 'वेदान्त-दर्शनका इतिहास' नामक एक विराट ग्रंथ की रचना की है। यद्यपि इसके सभी क्षेत्रोंमें विशुद्ध विचार नहीं है तथा लेखक गौड़ीय वैष्णवोंके विरोधी और विद्वेषी थे, तथापि इसमें केशव काश्मीरीको निम्बार्क स्वामीका शिष्य बतलाया गया है। अतएव केशव काश्मीरी और श्रीनिवास आचार्य दोनों ही निम्बार्क स्वामीके शिष्य हैं। केशव काश्मीरी दिग्विजय करनेके लिए भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भ्रमण कर योगी, ज्ञानी, तपस्वी और सांख्य-मतावलंबी अनेकानेक पंडितोंको शास्त्रार्थमें पराजित करते हुए नवद्वीपमें पहुंचे। वहाँ १६ वर्षीय युवक निमाई पंडित (जो साक्षात् ईश्वर हैं) के निकट पराजित हुए और अत्यन्त लज्जित होकर सरस्वती देवीका ध्यान किया। सरस्वती देवीके आदेशानुसार उन्होंने श्रीमन् महाप्रभुके निकट धर्म शास्त्रोंका प्रधानतः अचिन्त्यभेदाभेद-तत्वका विचार श्रवण किया। उन विचारोंको सुनकर वे अत्यंत मुग्ध हो पड़े तथा उनसे प्रभावित होकर स्वयं अपना एक सम्प्रदाय चलाया। वृद्धावस्थामें शास्त्रार्थमें पराजित होने पर सरस्वतीदेवीके आदेशानुसार श्रीमन् महाप्रभुके चरणोंमें शरणागत होने पर भी केशव काश्मीरीकी आत्मग्लानि दूर न हुई। उनके हृदयमें विद्वेषकी आग पूर्णरूपसे बुझ न सकी। वही आग आज भी निम्बार्क सम्प्रदायके भीतर परिलक्षित होती है। उसी विद्वेषके कारण उन्होंने अपने बड़े गुरुभाई तथा शिक्षागुरु-स्वरूप श्रीनिवास आचार्यके साथ मिलकर पारिजात-भाष्य नामक वेदान्तसूत्रके एक भाष्यकी रचना की, और उस ग्रंथ की प्रामाणिकता स्थापन करनेके लिए उसे निम्बार्क द्वारा रचित बतलाकर वैष्णव समाजमें प्रचार करनेके लिए चेष्टा करने लगे। फिर इन दोनोंने अपने-अपने नामसे अलग-अलग उस भाष्य पर टीकाएँ भी लिखीं। इन टीकाओंका मुख्य उद्देश्य यह बतलानेके लिए है कि पारिजात-भाष्य उन लोगोंकी रचना नहीं है, बल्कि उनके गुरुदेवकी रचना है। केशव काश्मीरी और श्रीनिवासके आविर्भाव-कालके सम्बन्धमें विवेचना करनेसे पता चलता है कि श्रीमन्महाप्रभु जब गृहस्थ लीलाका अभिनय कर रहे थे उस समय दोनों वृद्धावस्था में वर्त्तमान थे।

श्रीमन् महाप्रभुके साथ भेंट होनेपर केशव काश्मीरीको निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य के रूपमें अपना परिचय देनेमें लज्जा प्रतीत हुई। अतः उन्होंने अपना परिचय गुप्त रखा। इसका कारण यह था कि उस समय तक निम्बार्क सम्प्रदायमें किसी ग्रन्थकी रचना नहीं हुई थी अथवा उस समय तक निम्बार्क सम्प्रदाय भारतीय इतिहास पर अपना प्रभाव नहीं डाल सका था। इसी लिए किसी भी गोस्वामी-ग्रन्थोंमें निम्बार्क सम्प्रदायका कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता। गोस्वामियोंके स्थितिकालमें यदि निम्बार्क सम्प्रदायका तनिक भी अस्तित्व रहता तो जीव गोस्वामी अथवा रूप-सनातन आदि अन्यान्य गोस्वामी लोग अवश्य ही निम्बार्क सम्प्रदायका उल्लेख किए होते। रामानुज, मध्व तथा विष्णुस्वामी आदि आचार्योंका उल्लेख गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें उपलब्ध तो होता है किन्तु निम्बार्कके सम्बन्धमें कहीं भी कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल केशव काश्मीरीके उभाड़नेसे गौड़ीय वैष्णवोंके विरोधमें एक नए सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई है। सच पूछिए तो श्रीमन् महाप्रभुके आविर्भाव से पूर्व इस सम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थका अस्तित्व नहीं पाया जाता। इसका विस्तृत विवरण क्रमशः प्रकाशित किया जाएगा।

१—दरिद्र नारायणकी सेवा

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष १, संख्या १२, पृष्ठ २८८ से आगे]

देवेन्द्रने उत्तर दिया—'वैष्णवलोग सभी वस्तुओं में भगवद्दर्शन करते हैं—इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी चीजें भगवान् हैं। वे समस्त वस्तुओंको अपने उपास्य भगवान् श्रीविष्णुसे सम्बन्धयुक्त दर्शन करते हैं। उन वस्तुओंको भगवान्‌की सेवाके उपकरणरूपमें दर्शन करते हैं तथा उनसे अपने आराध्यदेवकी सेवा करते हैं। महाभागवत समस्त वस्तुओंमें अपने आराध्य भगवान्‌का अधिष्ठान दर्शन करता है। तथा उनके दर्शनमें कोई भी वस्तु भगवान्‌से स्वतन्त्र नहीं होती है। प्रह्लादजीने स्तंभके भीतर अपने आराध्य-देवका दर्शन किया था, किन्तु उन्होंने स्तंभको अपना आराध्यदेव नहीं बतलाया। उन्होंने न तो स्तंभकी सेवाको नृसिंहदेवकी सेवा ही मानी और न स्तंभकी पूजा ही की। उन्होंने यत्र-तत्र सर्वत्र सभी वस्तुओंमें अपने भगवान्‌को विराजमान देखा था। परन्तु हिरण्यकशिपुने उनके भावको न समझकर स्तंभको ही विष्णु मान चकनाचूर कर विष्णुको ध्वंस करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु नृसिंहदेवका तो बाल भी बाँका न हुआ। जैसे स्तंभके ध्वंस होने पर भी नृसिंहदेवका ध्वंस नहीं हुआ, वैसे ही स्तंभकी सेवा द्वारा भी नृसिंहदेवकी सेवा नहीं होती। सीधी बात यह है कि आधार और आधेय एक वस्तु नहीं है। 'घड़ेमें जल है'—कहनेसे जैसे घड़ा और जल एक ही चीज नहीं है, वैसे ही मनुष्यमें या प्रत्येक प्राणियोंमें भगवान् हैं—कहनेसे प्रत्येक प्राणी या मनुष्य भी भगवान् नहीं हो सकते। अथवा सभी वस्तुओंमें भगवान् हैं—ऐसा कहनेसे सभी वस्तुओंको भगवान मानना नितान्त मूर्खता है। वस्तु आधार है और भगवान् आधेय हैं—दोनों कभी एक नहीं हो सकते।

'अच्छी बात है,यदि मनुष्यकी सेवा द्वारा भगवान्‌की सेवा नहीं होती तो तुमलोग साधु वैष्णवोंकी सेवा क्यों करते हो ?'—नरेन्द्रने फिर प्रश्न किया।

देवेन्द्रने कहा—'हमलोग वैष्णवोंकी—संतोंकी सेवा करते हैं—यह बिलकुल सत्य है। किन्तु वैष्णवको हमलोग विष्णुके पर्यायमें गणना नहीं करते। हम उन्हें विषयजातीय भोक्ता अर्थात् भगवान् नहीं मानते। हाँ, वैष्णव भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय होते हैं, यहाँ तक कि भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है—'मैं उन लोगोंके प्रति उतना प्रसन्न नहीं होता जो हमारी सेवा करते हैं, जितना उन लोगोंके प्रति, जो हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं।' बद्ध जीव वैष्णवोंकी सेवा करते हैं—यह तो दूर रहे, स्वयं भगवान् भी वैष्णवों की सेवा कर अघाते नहीं। भक्त भगवान्‌के कितने प्रिय हैं, वे उद्धवसे स्वयं कहते हैं—

'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥'
(श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

अर्थात् हे उद्धव ! ब्रह्मा, संकर्षण, लक्ष्मी या स्वयं अपने आप मैं भी मुझे उतना प्रिय नहीं हूँ जितना तुम मेरे प्रिय हो।

और भी—'मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥'
(श्रीमद्भा० ११।१९।२१)

यहाँ भी भगवान् अपने भक्तोंकी पूजाकी श्रेष्ठता बतला रहे हैं। पद्मपुराणमें शिवजीने अपनी प्रिया पार्वतीजीको इसी तत्त्वका उपदेश दिया है—

'आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि ! तदीयानां समर्चनम्॥'

श्रीमद्भागवतमें और भी कहा गया है—

'महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः
तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।'
(श्रीमद्भा० ५।५।२)

'महत् व्यक्तियोंकी अर्थात् साधु-वैष्णवोंकी सेवा करना सभीका कर्त्तव्य है । इससे परामुक्ति अर्थात् प्रेमभक्ति लाभ होती है; और विषयभोगोंमें आसक्त व्यक्तियोंका सङ्ग करनेसे तमोद्वार अर्थात् नरकमें सदा के लिए पतन हो जाता है । इसलिए पापात्मा व्यक्तिको अन्न-वस्त्र आदिका दान और साधु वैष्णवोंकी सेवाको समान समझना अथवा दरिद्रोंकी सहायता को नारायणकी सेवा मानना नास्तिकताका चरम है, घोरतम अपराध है ।'

'ओह ! दस बज गये ।' नरेन्द्रने अपनी घड़ीकी तरफ देखा । 'तुम्हारी बातें बड़ी युक्तिपूर्ण हैं, फिर भी मेरे सन्देह पूर्णरूपसे दूर नहीं हो पाये हैं । चलो, फिर दूसरे दिन मिलेंगे ।' वह उठ खड़ा हुआ ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम

जैव-धर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष २, संख्या १, पृष्ठ ३१२ से आगे]

काजी साहेबने कहा—'आप लोग जिसे जीव कहते हैं उसे हमलोग 'रूह' कहते हैं । यह रूह दो अवस्थाओंमें रहती है । अर्थात् रूहे मुजर्रदी और रूहे तरकीबी । जिसे आपलोग चित् कहते हैं उसे हम मुजर्रद कहते हैं । जिसे आपलोग अचित् कहते हैं उसे हमलोग जिस्म कहते हैं । मुजर्रद देश और कालके अतीत होता है । जिस्म देश और कालके अधीन होता है । तरकीबी रूह या बद्धजीव वासना, मन और मलकुत् अर्थात अज्ञानसे पूर्ण होता है । मुजर्रदी रूह इन सबसे शुद्ध और पृथक् होता है । आलम्-मिशाल नामकी जो चिन्मय भूमि है, वहाँ मुजर्रदी रूह रह सकती है । इस्क अर्थात् प्रेमको क्रमशः बढ़ाते-बढ़ाते रूह शुद्ध हो जाती है । पैगम्बर-साहेबको खुदा जिस स्थानमें ले जाते हैं, वहाँ जिस्म नहीं होता, किन्तु वहाँ भी रूह बन्दा अर्थात् दास है और ईश्वर अर्थात् खुदा प्रभु हैं । अतएव बन्दा और खुदाका सम्बन्ध नित्य होता है । शुद्ध भावसे इस सम्बन्धका होना ही मुक्ति है । कुरानमें तथा सूफियों की किताबमें इन सिद्धान्तोंका वर्णन किया गया है सही, किन्तु सब लोग उसे समझ नहीं पाते । गौराङ्ग प्रभुने कृपाकर जनाब चाँद काजीको इन सब बातोंकी शिक्षा दी थी । तभीसे हमलोग शुद्ध भक्त हो गये हैं ।'

लाहिड़ी—'कुरानका मूल मत क्या है ?'

काजी—'कुरानमें जिस बिहिस्तका वर्णन किया गया है, उसमें किसी तरहकी इबादतकी बात नहीं है यह ठीक है, किन्तु वहाँ जीवन ही इबादत है । खुदाका दर्शन कर लोग वहाँ बड़े सुखमें मग्न रहते हैं । यही बात श्रीगौराङ्गदेवने कही है ।'

लाहिड़ी—कुरानमें खुदाकी कोई मूर्त्ति मानी गयी है ?'

काजी—कुरानका कहना है, कि खुदाकी मूर्त्ति नहीं है । किन्तु श्रीगौराङ्गदेवने चाँदकाजी से कहा है, कि कुरानमें केवल जिस्मानी मूर्त्तिका निषेध है, शुद्ध मुजर्रदी मूर्त्तिका निषेध नहीं है । उस प्रेममयी मूर्त्तिको पैगम्बर साहेबने अपने अधिकारके अनुरूप देखा था । अन्यान्य रसोंके भाव छिपे हुए थे ।'

लाहिड़ी—'इस विषयमें सूफियोंका क्या मत है ?'

काजी—'वे अनलहक अर्थात् 'मैं ही खुदा हूँ' के सिद्धान्तको मानते हैं । आप लोगोंका अद्वैतवाद और मुसलमानोंका 'असोवाफ' मत एक ही है ।'

लाहिड़ी—'क्या आप सूफी हैं ?'

काजी—'नहीं, हम लोग शुद्ध भक्त हैं । गौराङ्ग ही हमारे प्राण हैं ।'

इसी तरह बड़ी देर तक बातचीत होती रही । फिर काजी साहेब वैष्णवोंका सम्मान कर चले गए । इसके बाद हरिसंकीर्त्तनके उपरान्त सभा भंग हुई ।

पंचम अध्याय समाप्त ।

षष्ठ अध्याय

नित्यधर्म तथा जाति और वर्ण आदिका भेद

देवीदास विद्यारत्न एक अध्यापक हैं। बहुत दिनों से उनकी दृढ़ धारणा हो गयी है कि 'ब्राह्मणवर्ण ही सर्वश्रेष्ठ है। ब्राह्मणके अतिरिक्त कोई भी परमार्थ लाभ करनेके उपयुक्त नहीं होता। ब्राह्मणके घर जन्म पाये बिना जीवकी मुक्ति नहीं होती। जन्मसे ही ब्राह्मणमें ब्रह्मत्व पैदा होता है।' उस दिन वे काजी साहेबके साथ वैष्णवोंकी बातचीत सुनकर मनही-मन बहुत ही असन्तुष्ट हुए हैं। वे काजी साहेबके तत्त्वपूर्ण विचारोंमें तनिक भी प्रवेश न कर पा सके थे। वे मन-ही-मन झुँझलाने लगे कि—'मुसलमान जाति भी क्या ही एक अद्भुत बला है! बातें भी उनकी अजीब होती हैं, कुछ भी समझमें नहीं आतीं। खैर, पिताजी तो अरबी-फारसी पढ़े हैं। बहुत दिनोंसे धर्म-चर्चाएँ भी करते हैं। किन्तु मुसलमानोंका इतना आदर वे क्यों करते हैं? जिसे छूनेसे स्नान करना पड़ता है, परमहंस बाबाजी महाराजने क्या समझकर उसे मण्डपमें बैठाकर आदर सत्कार किया?' उन्होंने उसी रातको कहा था कि 'शंभु! मैं इस विषय में चुप नहीं रह सकता, तर्ककी प्रचण्ड आग जलाकर इस पाखण्डमतको भस्म कर दूँगा। जिस नवद्वीपमें सार्वभौम और शिरोमणि जैसे न्याय-शास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् हुए हैं, जहाँ रघुनाथने स्मृति-शास्त्रका मन्थनकर 'अष्टाविंशतितत्त्व' का प्रकाश किया है, उसी नवद्वीपमें आज आर्य और यवनोंका ऐसा व्यवहार? शायद नवद्वीपके अध्यापकोंको इस बातकी खबर नहीं।' दो-एक दिनमें ही विद्यारत्न इस काम में तन-मनसे लग पड़े।

तीसरे पहरका समय है। आकाश काले-काले बादलोंसे ढका हुआ है। इन बादलोंके मारे आज अभी तक एक बार भी सूर्यकी किरणें पृथ्वीको स्पर्श न कर सकीं। सबेरे दो-चार बूँदें पड़ गई हैं। देवी और शंभु उपयुक्त समय देखकर दस बजेके भीतर ही खिचड़ी खाकर तैयार हो गए हैं। वैष्णवोंको मधुकरी पानेमें कुछ विलम्ब हुआ। फिर भी प्रसाद सेवनकर सभी माधवी-मालती मण्डपके एक किनारे वाली बड़ी कुटियामें बैठे हैं। परमहंस बाबाजी, वैष्णवदास, नृसिंहपल्लीसे आए हुए पण्डित अनन्त-दास, लाहिड़ी महाशय तथा कुलिया-निवासी यादव-दास अपनी-अपनी तुलसी मालाओंपर परमानन्दसे हरिनाम कर रहे हैं। इसी समय विद्यारत्न महाशय, श्रीसमुद्रगढ़के निवासी चतुर्भुज पदरत्न, काशीके चिन्तामणि न्यायरत्न, पूर्वस्थलीके कालिदास वाचस्पति और विख्यात पण्डित कृष्णचूड़ामणि वहाँ उपस्थित हुए। वैष्णवोंने बड़े आदरके साथ ब्राह्मण पंडितोंको आसन देकर बैठाया।

परमहंस बाबाजीने कहा—'मेघाच्छन्न दिनको लोग दुर्दिन कहते हैं, किन्तु हमारे लिये तो सुदिन बन गया। आज हमारी कुटिया धामवासी ब्राह्मण पण्डितोंकी चरण-रजसे पवित्र हो गई।'

वैष्णव लोग स्वभावतः अपनेको तृणसे भी नीच मानते हैं। अतएव उनलोगोंने 'विप्रचरणेभ्यो नमः' कह कर प्रणाम किया। ब्राह्मण पण्डित लोग अपनेको श्रेष्ठ मान कर उन्हें आशीर्वाद देकर बैठ गये। विद्यारत्न उनलोगोंको तर्कके लिये तैयार कर ले आये हैं। उनलोगोंने लाहिड़ी महाशयको उनसे आयुमें बड़ा जानकर प्रणाम किया। लाहिड़ी महाशय अब तत्त्वज्ञ हो गये हैं, उन्होंने पण्डितोंके प्रणामको हाथों-हाथ लौटा दिया।

उन पण्डितोंमें कृष्ण चूड़ामणि सबसे अच्छे वक्ता हैं। काशी मिथिला आदि अनेक स्थानोंमें भ्रमणकर अनेक पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर चुके हैं। कद नाटा और रङ्ग साँवला सा है, चेहरेसे गम्भीरता टपकती है। दोनों आँखें तारों जैसी चमकती हैं। उन्होंने वैष्णवोंसे बातचीत आरंभ की।

चूड़ामणिने कहा—'आज हमलोग वैष्णव-दर्शनके लिये आये हैं। यद्यपि आप लोगोंके समस्त आचारों-

का हम समर्थन नहीं करते, फिर भी आपलोगोंकी एकान्त भक्ति हमें बहुत अच्छी लगती है। भगवान्‌ने भी कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥ (क)
(गी० ९।३०)

'भगवद्गीताका यह वचन हमारा प्रमाण है। इसी सिद्धान्त पर निर्भर कर आज हम साधु दर्शन करने आये हैं। किन्तु हमारा एक अभियोग है, वह यह है कि आपलोग भक्तिके बहाने मुसलमानोंका सङ्ग क्यों करते हैं ? हम इस विषयमें आपलोगोंके साथ विचार करना चाहते हैं। आपलोगोंमें जो विशेष पढ़े-लिखे हों, वे जरा आगे आ जाँय।'

वैष्णवलोग चूड़ामणिकी बातोंसे बड़े दुःखित हुए। परमहंस बाबाजीने नम्र होकर कहा—'हमलोग मूर्ख ठहरे, शास्त्रार्थ करना क्या जानें? हमारे महाजनों ने जैसा आचरण किया है, हम उसीका आचरण करते हैं। आपलोग विद्वान् हैं, शास्त्रोंका जो उपदेश देंगे—हम उसे चुपचाप सुनेंगे।'

चूड़ामणिने कहा—'ऐसी बातोंसे कैसे काम चलेगा ? हिन्दू-समाजमें रह कर आपलोग यदि शास्त्र-विरुद्ध आचार-प्रचार करें तो इससे जगत्‌का ध्वंस हो जायगा। शास्त्र-विरुद्ध आचार-प्रचार भी करेंगे और महाजनोंकी दोहाई भी देंगे—यह कैसी बात है ? महाजन कहते हैं किसे ? यदि महाजनका आचरण और उसकी शिक्षा शास्त्रोंके अनुकूल है, तभी वह महाजन है और नहीं तो जिसे-तिसे महाजन खड़ा कर 'महाजनो येन गतः स पन्थाः।' कहनेसे जगत्‌का कल्याण कैसे हो सकता है ?'

चूड़ामणिकी बातें वैष्णवोंके लिये असहनीय हो उठीं। वे लोग वहाँसे उठकर एक अलग कुटीमें जाकर परामर्श करने लगे। अन्तमें तय हुआ, जब महाजनों-के प्रति दोषारोप किया जा रहा है, तब शक्ति रहते विचार करना उचित है। परमहंस बाबाजी शास्त्रार्थ-के बखेड़ेसे दूर रहे। पण्डित अनन्तदासजीके न्याय-शास्त्रके विद्वान् होने पर भी सब लोगोंने श्रीवैष्णव-दास बाबाजीको ही शास्त्रार्थ करनेके लिये अनुरोध किया। इनलोगोंको यह समझते देर न लगी कि देवीदास विद्यारत्नने ही यह झगड़ा उपस्थित किया है।

लाहिड़ी महाशय भी वहीं थे। उन्होंने कहा—'देवी बड़ा अभिमानी है। उस दिन काजी साहेबके साथ हमलोगोंका व्यवहार देखकर उसे कुछ बुरा लगा है। इसीलिये आज इन ब्राह्मण पण्डितोंको बुलाकर ले आया है।'

वैष्णवदासने परमहंस बाबाजीकी चरण-धूलि मस्तकपर धारण करते हुए कहा—'वैष्णवोंकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। आज मेरी पढ़ी हुई विद्याएँ सार्थक होंगी।'

अब आकाश निर्मल हो गया है। मालती-माधवी मण्डपमें लम्बा-चौड़ा आसन बिछाया गया। एक ओर ब्राह्मण पण्डित और दूसरी ओर वैष्णव-लोग बैठे। श्रीगोद्रुम और मध्यद्वीपके समस्त पण्डितों और वैष्णवोंको बुलाया गया। आस-पासके विद्यार्थी भी आकर सभामें बैठ गये। सभा खूब छोटी न हुई। लगभग एक सौ ब्राह्मण-पण्डित एक ओर और प्रायः दो सौ वैष्णव दूसरी तरफ बैठे। वैष्णवोंकी अनुमतिसे वैष्णवदास बाबाजी प्रशान्त भावसे सामने बैठे। उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना हुई, जिसे देखकर वैष्णवलोग आनन्दके मारे एकबार जोरसे हरिध्वनि किए। घटना यह हुई कि 'ऊपरमें फैली हुई लताओंसे मालतीके फूलोंका एक गुच्छा वैष्णव-दासके सिर पर गिरा।'

वैष्णव लोगोंने कहा,—'इसे श्रीमन्महाप्रभुका प्रसाद समझिए।'

दूसरी ओर बैठे हुए कृष्ण चूड़ामणिने जरा नाक भौं सिकोड़ कर कहा—'ऐसा ही समझें। फूलोंका काम नहीं—फलसे ही परिचय मिलेगा।'

(क) यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा निरन्तर भजन करता है, वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि उसका यह व्यवहार सब प्रकारसे सुन्दर है।

बातोंको अधिक न बढ़ाकर वैष्णवदासने कहा—'आज नवद्वीपमें वाराणसी जैसी सभा पायी गयी है। बड़े आनन्दकी बात है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ, फिर भी बहुत दिनों तक वाराणसी आदि स्थानोंमें अध्ययन करने तथा वहाँकी सभाओंमें वक्तृता आदि देनेके कारण मेरा बंगला भाषा बोलनेका अभ्यास कुछ कम हो गया है। मै चाहता हूँ, आजकी सभामें संस्कृत भाषामें ही प्रश्नोत्तर हों।"

चूड़ामणिने शास्त्रोंका अच्छा अध्ययन किया है। फिर भी कुछ कंठस्थ किए हुए पाठोंके अतिरिक्त वे धारावाहिक संस्कृत भाषा बोल नहीं सकते थे। उन्होंने वैष्णवदासके प्रस्ताव से कुछ संकुचित होकर कहा—'क्यों, बंगदेशकी सभामें बंगभाषा ही उपयुक्त है। मैं पश्चिम देशके पंडितोंकी तरह संस्कृत बोल न सकूँगा।'

उस समय उनके भावोंको देखकर ही लोग समझ गए कि चूड़ामणि वैष्णवदास के साथ शास्त्रार्थ करनेमें डर रहे हैं। सबने एक स्वरसे वैष्णवदास बाबाजी को बंगलामें बोलनेका अनुरोध किया। वे राजी हो गए।

चूड़ामणिने प्रश्न किया—'जाति नित्य है या नहीं? मुसलमान और हिन्दू ये दोनों जातियाँ अलग-अलग हैं या नहीं? मुसलमानोंके संसर्गसे हिन्दू पतित होते हैं या नहीं?'

वैष्णवदास बाबाजीने उत्तर दिया—'न्याय शास्त्रके अनुसार जाति नित्य है। किन्तु वह जाति मनुष्योंके देश-भेदसे उत्पन्न जाति-भेदको लक्ष्य नहीं करती; गो-जाति, बकरी-जाति, मनुष्य-जाति आदि जाति-भेदोंका निरुपण करना ही उसका उद्देश्य है।'

चूड़ामणिने कहा—'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। किन्तु हिन्दू और मुसलमानोंमें कोई जाति-भेद है या नहीं?'

वैष्णवदासने कहा'—हाँ एक प्रकार का जातिभेद है, किन्तु वह जाति नित्य नहीं। मनुष्यमात्रकी जाति एक है। भाषा-भेद, देश-भेद, वेष-भूषाके भेद तथा वर्णके भेदसे एक मनुष्य-जातिमें ही अनेक जातियोंकी कल्पना मात्र कर ली गयी है।'

चूड़ामणि—'क्या, जन्म द्वारा कोई भेद नहीं? क्या केवल पहनावे आदिके भेदसे ही हिन्दू और मुसलमानका भेद है अथवा उसका जन्मसे भी कोई सम्बन्ध है?'

वैष्णवदास—कर्मोंके अनुसार जीवका उच्च-नीच वर्णोंमें जन्म होता है, वर्णभेदके अनुसार मनुष्योंका कर्माधिकार पृथक्-पृथक् होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। बाकी सभी अन्त्यज हैं।'

चूड़ामणि—'मुसलमान अन्त्यज हैं या नहीं?'

वैष्णवदास—'हैं, वे शास्त्रके अनुसार अन्त्यज अर्थात् चारों वर्णोंसे बाहर हैं।'

चूड़ामणि—'तब मुसलमान कैसे वैष्णव हो सकता है, और आर्य वैष्णव लोग ही कैसे उनका सङ्ग कर सकते हैं?'

वैष्णवदास—'जिनको शुद्ध भक्ति है, वे ही वैष्णव हैं। मनुष्य-मात्र वैष्णवधर्मका अधिकारी है। जन्म-दोषके कारण मुसलमानोंका वर्णाश्रम धर्मके अनुसार प्रत्येक वर्णोंके लिये निर्दिष्ट कर्मोंमें अधिकार नहीं है; किन्तु भक्तिके क्षेत्रमें उनका सम्पूर्ण अधिकार है। कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और भक्तिकाण्डका परस्पर जो सूक्ष्म भेद है, उस पर जबतक पुंखानुपुंख रूपसे विचार नहीं किया जाता, तबतक यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि 'हमने शास्त्रोंका तात्पर्य जान लिया है।'

चूड़ामणि—'अच्छा, कर्म करते-करते चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने पर ज्ञानाधिकार उत्पन्न होता है। फिर ज्ञानियोंमें कोई निर्भेद ब्रह्मज्ञानी होता है और कोई सविशेषवाद स्वीकार करते हुए वैष्णव। इस तरह क्रमानुसार पहले कर्माधिकार समाप्त किये बिना वैष्णव नहीं हुआ जा सकता। ऐसी अवस्थामें अन्त्यज होनेके कारण मुसलमानोंको जहाँ कर्मोंमें अधिकार तक प्राप्त नहीं, उन्हें भक्तिका अधिकार कैसे मिल गया?'

वैष्णवदास—'अन्त्यज मनुष्योंको भक्तिमें पूर्ण अधिकार है—इसे प्रत्येक शास्त्र स्वीकार करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(गीता ९।३२)

अर्थात्, हे पार्थ ! स्त्री, वैश्य, शूद्र और पाप-योनियोंमें जन्मग्रहण करनेवाले अन्त्यज आदि जो कोई भी हों, मेरा थोड़ा भी आश्रय लेते हैं, तो वे परमगतिको ही प्राप्त होते हैं। यहाँ 'आश्रय' शब्दका अर्थ—भक्तिसे है। स्कन्दपुराणके अन्तर्गत काशी-खण्डमें भी इसका समर्थन किया गया है—

'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदिवेतरः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥' (क)
(काशीखण्ड २१।६३)

नारदीय पुराणमें भी—

'श्वपचोऽपि महीपाल विष्णु-भक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्ति-विहीनो यो यतिश्च श्वपचाधिकः ॥' (ख)

चूड़ामणि—'प्रमाण अनेक दिये जा सकते हैं। किन्तु आवश्यकता तो इस बातकी है कि विचारमें क्या ठहरता है। दुर्जाति-दोष कैसे दूर होता है ? जन्म द्वारा जो संग-दोष उत्पन्न होता है, क्या वह पुनः जन्म लिये बिना कभी दूर हो सकता है ?'

वैष्णवदास—'दुर्जाति-दोष— प्रारब्ध-कर्म है। वह भगवन्नामके उच्चारण से दूर हो जाता है। इसका प्रमाण देखिये—

श्रीमद्भागवत—

यन्नाम सकृत् श्रवणात् पुक्कसोऽपि विमुच्यते संसारात् (ग)
(श्रीमद्भा० ६।१६।४४)

और—

नातः परं कर्म-निबन्ध-कृन्तनं,
मुमुक्षतां तीर्थ-पदानुकीर्त्तनात् ।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो,
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ (घ)
(श्रीमद्भा० ६।२।४६)

फिर देखिये—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यं ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानुचूर्नाम गृणन्ति ये ते ॥' (च)

(क) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा चारोंवर्णोंसे बहिर्भूत अन्त्यज भी यदि विष्णुभक्तिका आश्रय ग्रहण कर ले, तो उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिये।

(ख) हे राजन् ! चण्डाल भी यदि विष्णुका भक्त हो, तो वह ब्राह्मणकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। यहाँ तक कि जो संन्यासी विष्णुभक्ति-विहीन होता है, वह चण्डालसे भी अधम होता है।

(ग) जिनका नाम एकबार सुननेसे चण्डाल भी उसी समय संसार और जातिदोषसे मुक्त हो जाता है।

(घ) जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बना देने वाले भगवान्के नाम संकीर्त्तनसे बढ़कर कोई साधन नहीं है, जिससे पापोंका समूल ध्वंस हो सके। क्योंकि भगवान्का आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर कर्मके पचड़ोंमें नहीं पड़ता। भगवन्नामके अतिरिक्त किसी भी दूसरे प्रायश्चित्तका आश्रय करनेसे मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा उससे पापोंका मूलसे नाश नहीं होता।

(च) अहो ! नाम ग्रहण करनेवाले पुरुषोंकी श्रेष्ठताकी बात और अधिक क्या कहूँ ? जिनके जिह्वाके अग्र-भागमें आपका नाम उच्चारित होता है, वे चण्डाल-कुलमें जन्म लेने पर भी सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी ब्राह्मण्यता तो पूर्व जन्ममें ही सिद्ध हो चुकी है, क्योंकि जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने ब्राह्मणोंके तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ पहले ही कर लिया है।

चूड़ामणि—'तब भगवन्नामको उच्चारण करनेवाला चण्डाल यज्ञादि कर्मोंको क्यों नहीं कर सकता ?'

वैष्णवदास—'यज्ञादि कर्मोंको करनेके लिये ब्राह्मणके घर जन्म लेनेकी आवश्यकता है । जैसे ब्राह्मणके घर जन्म लेने पर भी यज्ञोपवीत-संस्कार न होनेसे कर्माधिकार नहीं होता, वैसे ही हरिनामका आश्रयकर चण्डाल शुद्ध होनेपर भी ब्राह्मणके घर शीघ्र जन्म न पाने तक यज्ञका अधिकारी नहीं होता । किन्तु यज्ञकी अपेक्षा अनन्त गुण श्रेष्ठ भक्तिके अङ्गोंका आचरण कर सकता है ।।

चूड़ामणि—'वाह, अच्छा सिद्धान्त रहा । जिसे साधारण अधिकार तक नहीं दिया गया, उसे अत्यन्त श्रेष्ठ अधिकार दिये जाय, इसका स्पष्ट प्रमाण क्या है?'

वैष्णवदास—मनुष्य की क्रियायें दो प्रकारकी होती हैं—व्यावहारिक और पारमार्थिक । पारमार्थिक अधिकार प्राप्त करके भी किसी-किसी व्यावहारिक क्रियाओंमें अधिकार नहीं मिलता । जैसे—एक मनुष्य जन्मसे मुसलमान है,, किन्तु ब्राह्मणवर्णके स्वभाव और समस्त गुणोंसे वह युक्त है । ऐसी अवस्थामें वह व्यक्ति पारमार्थिक दृष्टिसे ब्राह्मण है, फिर भी व्यावहारिक क्रियाओंका— जैसे. ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह आदिका वह अधिकारी नहीं हो सकता ।'

चूड़ामणि—'क्यों नहीं हो सकता ? करनेमें दोष ही क्या है ?'

वैष्णवदास—'लोक-व्यवहारके विरुद्ध काम करनेसे व्यावहारिक दोष होता है । समाजके लोग जो व्यावहारिक सम्मानका गर्व रखते हैं,ऐसे कामोंमें वे अपनी स्वीकृति भी नहीं देते । इसलिये पारमार्थिक अधिकार होने पर भी व्यवहार नहीं चल सकता ।'

चूड़ामणि—'अब बतलाइये, कर्माधिकारका हेतु क्या है और भक्ति-अधिकारका हेतु क्या है ?'

वैष्णवदास—'तत्तत्कर्मके योग्य स्वभाव और जन्म आदि व्यावहारिक कारणही कर्माधिकारके हेतु हैं । तात्त्विक श्रद्धा ही भक्ति-अधिकारका हेतु है ।'

चूड़ामणि—'वैदान्तिक शब्दोंसे मुझे दबानेकी चेष्टा न करें । स्पष्ट बतलाइए कि 'तत्तत् कर्मके योग्य स्वभाव' किसे कहते हैं ?'

वैष्णवदास—'शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ईश्वरकी भक्ति, दया और सत्य—ये ब्राह्मण वर्णके स्वभाव हैं । तेज, बल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, उदारता, उद्योगशीलता स्थिरता, ब्रह्मण्यता, और ऐश्वर्य—ये क्षत्रिय वर्णके स्वभाव हैं । ईश्वर-विश्वास,दानशीलता, निष्ठा, दंभहीनता और अर्थ-लोलुपता—ये वैश्य वर्णके स्वभाव हैं । ब्राह्मण, गौ और देवताओंकी सेवा, जो मिले उसीमें संतोष,—ये शूद्रवर्णके स्वभाव हैं और अशौच, मिथ्या, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध तथा तृष्णाके वश होना—ये अन्त्यज वर्णके स्वभाव हैं । इन स्वभावोंके अनुसार वर्णका निरूपण करना ही शास्त्रका उद्देश्य है । केवल जन्म द्वारा वर्णका निर्णय करना—आधुनिक व्यवहारमात्र है । इन स्वभावोंके अनुरूपही मनुष्यमें क्रिया-प्रवृत्ति और कर्म-कुशलता उत्पन्न होती है 'अर्थात्' जिस मनुष्यका जैसा स्वभाव होता है, उसकी वैसेही क्रियाओंमें प्रवृत्ति और कर्मोंमें रुचि उत्पन्न होती है । ऐसे स्वभावोंका नाम ही 'तत्तत्कर्मयोग्य स्वभाव'है । बहुत लोगोंका स्वभाव जन्मके अनुसार होता है और अनेक स्थलोंमें संसर्ग ही स्वभावका जनक होता है । संग जन्म होनेके साथही आरम्भ हो जाता है, और उसी संगके अनुसार स्वभावका गठन होता है । अतएव जन्मसे ही स्वभाव परिलक्षित होता है । किन्तु जन्मसे स्वभावकी उत्पत्ति होने के कारण जन्मको ही स्वभावका एकमात्र कारण और कर्माधिकारका हेतु मानना भूल है । 'हेतु'— अनेक प्रकार के हैं । इसलिए स्वभावको देखकर कर्माधिकार निर्णय करना ही शास्त्रोंका उद्देश्य है ।'

चूड़ामणि—'तात्त्विक श्रद्धा किसे कहते हैं ?'

वैष्णवदास—'सरल हृदयसे ईश्वरके प्रति जो विश्वास होता है और उसके लिये जो स्वाभाविक चेष्टा उत्पन्न होती है, उसे तात्त्विक श्रद्धा कहते हैं। केवल लौकिक चेष्टाको देखकर अशुद्ध हृदयमें जो ईश्वर-सम्बन्धी भ्रान्त धारणा होती है, तथा स्वार्थके लिये दंभ, प्रतिष्ठा और कामनामूलक जो चेष्टा होती है, उसे 'अतात्त्विक श्रद्धा कहते हैं। कोई-कोई महाजन तात्त्विक-श्रद्धाको शास्त्रीय श्रद्धा भी कहते हैं। यह तात्त्विक श्रद्धा ही भक्ति-अधिकारका कारण है।'

चूड़ामणि—'मान लिया किसी व्यक्तिको शास्त्रीय श्रद्धा तो उत्पन्न हो गयी है, परन्तु उसका स्वभाव उच्च नहीं हो सका है। ऐसी अवस्थामें क्या वह भी भक्तिका अधिकारी है?'

वैष्णवदास—'स्वभाव कर्माधिकारका हेतु है, न कि भक्ति-अधिकारका। भक्ति अधिकारका हेतु तो एकमात्र श्रद्धा है। श्रीमद्भागवत स्कं-११, अ० २०) में इसे स्पष्ट कर दिया गया है—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥२७॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥२८॥
प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुनेः ।
कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥२९॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥३०॥
यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥३२॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥३३॥(क)

—'सत्सङ्गके प्रभावसे किसी मनुष्यकी हरिकथाके श्रवणमें रुचि उत्पन्न होती है, उस समय उसे दूसरा कोई भी काम अच्छा नहीं लगता। वह दृढ़ विश्वासके साथ भगवन्नाम लेता रहता है। उन भोग और भोगवासनाओंको, जिनका वह अपने पूर्व अभ्यासके कारण परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता, मन-ही-मन बुरा समझकर उनकी निन्दा करते-करते भोग करता है। हरिकथाके श्रवण और कीर्त्तनादिसे उसके हृदयकी सारी भोगवासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। मेरा निरन्तर भजन करनेसे मैं उस साधकके हृदयमें बैठ जाता हूँ और मेरे विराजमान होते ही उसके सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और कर्म वासनाएँ सर्वथा क्षीण हो जाती हैं। यह मेरी एक नित्य-विधि है। अतएव कर्म, तपस्या ज्ञान, वैराग्य, योगाभ्यास, दान, धर्म और दूसरे कल्याण साधनोंसे

(क) जिस साधकको मेरी कथाओंमें श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है, यदि वह सभी भोग और भोग-वासनाओंको दुःखरूप जानकर भी उनको परित्याग करनेमें समर्थ न हो, उसे चाहिए कि उन भोगोंको सच्चे हृदयसे दुःखजनक समझते हुए और मनही-मन उनकी निन्दा करते हुए भोगता रहे, किन्तु साथ-ही-साथ श्रद्धा, दृढ़ निश्चय और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन भी करता रहे ॥ २७-२८ ॥

इस प्रकार मेरे बतलाए हुए भक्तियोगके द्वारा निरन्तर मेरा भजन करनेसे मैं उस साधकके हृदयमें आकर बैठ जाता हूँ और मेरे विराजमान होते ही उसके हृदयकी सारी वासनाएँ अपने संस्कारोंके साथ नष्ट हो जाती हैं ॥२९॥

इस तरह जब उसे मुझे सर्वात्मका साक्षात्कार हो जाता है, तब तो उसके हृदयकी गाँठ टूट जाती है और उसके सारे संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्म-वासनाएँ सर्वथा क्षीण हो जाती हैं ॥३०॥

कर्म और तपस्यासे, ज्ञान और वैराग्यसे, योगाभ्यास और दानसे तथा दूसरे-दूसरे व्रत आदि कल्याण-साधनोंसे जो कुछ भी अत्यन्त कष्टसे प्राप्त होता है, वह सब मेरा भक्त मेरे भक्तियोगके प्रभावसे अनायास ही प्राप्त कर लेता है ॥३२॥

यद्यपि मेरे भक्त निष्काम होते हैं, तथापि यदि वे स्वर्ग, अपवर्ग अर्थात् मोक्ष, मेरा परमधाम अथवा अन्य कोई भी वस्तुकी कामना करें, तो प्राप्त कर लेते हैं ॥३३॥

जो कुछ स्वर्ग, मोक्ष, मेरा परमधाम अथवा दूसरी कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है, वह सब मेरा भक्त मेरे भक्ति योगके प्रभावसे अनायास ही प्राप्त कर लेता है। श्रद्धासे उत्पन्न भक्तियोगका यही क्रम-पथ है।'

चूड़ामणि—'यदि मैं श्रीमद्भागवतको न मानूँ ?'

वैष्णवदास—'सभी शास्त्रोंका यही एक विचार है। भागवत न माननेसे दूसरे शास्त्र आपको बाधा देंगे। बहुत शास्त्रोंको दिखलानेकी आवश्यकता न होगी, गीता सर्वसम्मतवादी ग्रन्थ है, आप पहले गीताको ही लीजिए। आपने यहाँ आते ही जिस श्लोकका उच्चारण किया था उसीमें समस्त शिक्षा भरी पड़ी है—

अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
(गीता ९।३०)

अर्थात्, अनन्यभाक् या मुझमें अनन्यभावसे श्रद्धायुक्त होकर जो भगवत्कथा और भगवन्नामके श्रवण और कीर्त्तनसे युक्त भगवद्भजनमें मग्न रहते हैं, अतिशय दुराचारी होनेके कारण उनका आचरण कर्म-पद्धतिसे विरुद्ध होने पर भी उन्हें साधु मानना चाहिए, क्योंकि उन्होंने साधु-पथका अवलम्बन किया है। मतलब यह है कि कर्मकाण्डमें वर्णाश्रमादिका पथ एक प्रकारका है, ज्ञानकाण्डमें ज्ञान-वैराग्यादिका पथ दूसरे प्रकारका है और सत्संगमें हरिकथा तथा हरिनाममें श्रद्धाका पथ तीसरे प्रकारका है। ये तीनों पथ कभी-कभी एक ही साथ कर्मयोग, ज्ञानयोग या भक्तियोगके नामसे प्रकाशित होते हैं। कभी-कभी उनका साधन अलग-अलग भी होता है। पृथक्रूपसे साधन करनेवाले साधकोंको कर्मयोगी और ज्ञान-योगी कहते हैं। इनमें भक्ति-योगी सर्वश्रेष्ठ हैं। क्योंकि भक्ति-योगके पृथक् साधनमें अर्थात् अनन्य भक्ति-योगमें अनन्त कल्याण निहित है। अतएव गीताके प्रथम छः अध्यायोंके अन्तमें इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की गयी है।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ (क)
(गीता ६।४७)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो-वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(गीता ९।३१-३२)

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा'—इस श्लोकका तात्पर्य खूब अच्छी तरह समझनेकी आवश्यकता है। जो लोग श्रद्धालु होकर अनन्यभक्तिका आश्रय करते हैं, उनके स्वभाव और चरित्र-दोष शीघ्र ही दूर हो जाते हैं। जहाँ भक्ति होती है, धर्म उसके पीछे-पीछे चलता है। भगवान् सब धर्मोंके मूल हैं। वे सहज ही भक्तिके अधीन होते हैं। भगवान्के हृदयमें विराजमान होते ही जीवको बाँधनेवाली माया तत्काल ही दूर हो जाती है,—दूसरे साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। भक्त होते न होते ही धर्म भक्तके हृदय को धर्ममय कर देता है। इधर भोग-वासनाएँ दूर होते ही शान्ति आ विराजती है। इसलिए मेरी प्रतिज्ञा है कि—'मेरे भक्तोंका कभी विनाश नहीं होता।' कर्मी और ज्ञानी स्वतंत्र होकर अपनी-अपनी साधना करते समय कुसंगमें पड़ सकते हैं, किन्तु मेरा भक्त मेरे संगके प्रभावसे कुसंगमें नहीं पड़ने पाता। इसलिए उसका पतन भी नहीं होता। भक्त किसी पाप योनिमें अथवा किसी ब्राह्मणके घरमें जन्म ग्रहण करे परागति सर्वदा उसके हाथोंमें स्थित होती है।'

(क्रमशः)

(क) हे अर्जुन ! सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो दृढ़ श्रद्धासे, मद्गतचित्तसे मेरेको निरन्तर भजता है, वही योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।